नई दिल्ली
रविवार, 12 अप्रैल, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-25 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

जैसे-जैसे बनाए जा रहे नए-नए हवाई अड्डे, वैसे-वैसे बंद भी हो रहे, अरबों रुपये की बर्बादी 5

सिर्फ बकवास और खातों की हेरा-फेरी 4

बांसुरी में सुर 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

युद्ध के समय महफ़ूज़ रहने की समझदारी

अरुण कुमार

पश्चिम एशिया में चल रहा युद्ध कब खत्म होगा, कहना मुश्किल है। यह लेख लिखे जाने के समय, दो हफ्तों के संघर्षविराम पर सहमति बन जाने के बाद भी यही आशंका है कि संबंधित पक्षों के बीच गहरा अविश्वास बना रहेगा और स्थिति तनावपूर्ण ही रहेगी। यहां तक कि युद्ध खत्म हो जाने के बाद भी खाड़ी देश फौरन उत्पादन नहीं बढ़ा पाएंगे क्योंकि हमलों में उनके बुनियादी ढांचे को काफी नुकसान हुआ है। इसलिए, युद्ध रुकने के बाद भी ऊर्जा की किल्लत बनी रहने वाली है।

जहां तक संघर्ष के भारत पर असर की बात है, स्थिति दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही है। कीमतें बढ़ रही हैं और कई उद्योगों में उत्पादन प्रभावित हुआ है, जिसका सबसे ज्यादा असर रेस्टोरेंट और होटलों पर दिख रहा है। शहरों में रहने वाले प्रवासी मजदूरों को एक तो कुकिंग गैस मिल नहीं पा रही और मिल भी रही है तो इतनी महंगी कि खरीदना मुश्किल। ऐसे में वे मजबूर होकर अपने गांव लौट रहे हैं, जैसे उन्हें कोविड महामारी के दौरान करना पड़ा था।

जब तक युद्ध चलता रहेगा या युद्ध जैसी स्थितियां बनी रहेंगी, वैश्विक ऊर्जा आपूर्ति को लगने वाला झटका तेज होता जाएगा। चूंकि सभी तरह के उत्पादन, वितरण और उपभोग के लिए ऊर्जा जरूरी है, कच्चे तेल और गैस की कमी का असर उत्पादन पर भी पड़ेगा। वैकल्पिक स्रोतों से आपूर्ति बढ़ने और अन्य उपायों- जैसे खुले समुद्र में रूसी और ईरानी तेल खरीदने की अनुमति, और सऊदी की ईस्ट-वेस्ट पाइपलाइन (जिसे पेट्रोलाइन भी कहते हैं) के जरिये लाल सागर के रास्ते तेल भेजने की सुविधा-के बावजूद, फिलहाल दुनिया में कच्चे तेल और गैस में कम-से-कम फीसद की कमी है।

पाइपलाइन में मौजूद पेट्रोलियम उत्पादों का स्टॉक और रणनीतिक भंडार सीमित समय तक ही चल पाएगा। इसलिए, वैश्विक उत्पादन पर बुरा असर पड़ रहा है और आपूर्ति श्रृंखलाएं बाधित हो रही हैं। चूंकि पेट्रोलियम उत्पादों पर दुनिया की निर्भरता अब 1970 के दशक (अरब-इसराइल युद्ध के समय) की तुलना में कहीं अधिक है, इसलिए इसका प्रभाव भी कहीं अधिक है।

चूंकि सभी उत्पादन गतिविधियों के साथ-साथ परिवहन और वितरण के लिए भी ऊर्जा की जरूरत होती है, इसलिए ऊर्जा की कीमत बढ़ने का मतलब है सभी उत्पादों की कीमतों में वृद्धि। इसके अलावा, कच्चा तेल सिर्फ ऊर्जा का ही स्रोत नहीं, बल्कि यह केमिकल्स और गैस वगैरह के लिए कच्चा माल भी है। इससे सल्फर और एलपीजी मिलती है। इसका इस्तेमाल सिंथेटिक फाइबर, खाद, प्लास्टिक, दवाओं, लुब्रिकेंट, सड़कों के लिए बिटुमेन वगैरह बनाने में किया जाता है। इसलिए, कच्चे तेल की कमी से दूसरी चीजों की भी कमी हो जाती है, और कच्चे माल की कीमतों में वृद्धि के कारण सीधे-सीधे दाम तो बढ़ता ही है, इसके अलावा सट्टेबाजी और कालाबाजारी की वजह से कीमतें और बढ़ जाती हैं।

भारत पर असर

खाद की कमी और सिंचाई और परिवहन की बढ़ती लागत से खेती पर असर पड़ेगा। खाने-पीने की चीजों की कीमतों में होने वाली किसी भी वृद्धि की मार एक बार फिर मजदूरों पर पड़ेगी। डीजल की कमी का असर मछली पकड़ने के काम पर पहले से ही पड़ने लगा है। कपड़ा, पैकेजिंग और सिरेमिक टाइल्स बनाने वाली यूनिट पर भी इसकी मार पड़ी है। कुकिंग गैस की कमी से होटलों और रेस्टोरेंट पर असर पड़ रहा है, और खबरों के मुताबिक, कई तो बंद भी हो रहे हैं। इसका असर मनोरंजन जगत पर भी पड़ रहा है, जो यात्रा में आई गिरावट से भी प्रभावित हो रहा है।

भारत पर इसका खास तौर पर बुरा असर पड़ेगा, क्योंकि वह आयात पर बहुत ज्यादा निर्भर है- कच्चे तेल की 85 फीसद और एलएनजी की 50 फीसद आपूर्ति के लिए हमें विदेशों का मुंह ताकना पड़ता है। भारत को न सिर्फ मौजूदा ऊंची कीमतों पर खाड़ी देशों के अलावा दूसरे स्रोतों से ज्यादा महंगा तेल और गैस खरीदना पड़ेगा, बल्कि वैश्विक कमी को देखते हुए उसे अपनी जरूरत के हिसाब से तेल-गैस मिल भी नहीं पाएगा।

सरकार का दावा है कि किसी चीज की कोई कमी नहीं है, लेकिन लंबी कतारें और बहुत ज्यादा कीमतों पर हो रही रिफिलिंग कुछ और ही कहानी बयां करती हैं।

पश्चिम एशिया से होकर जाने वाले हवाई और समुद्री रास्ते बाधित होने से, इस क्षेत्र में व्यापार और यात्रा में कमी आई है। एयरलाइंस और शिपिंग पर इसका असर पड़ा है। लोग फंसे हुए हैं और व्यापार कम हो गया है। शिपिंग इंश्योरेंस की दरें बढ़ गई हैं, और पश्चिम एशिया तक या वहां से होकर जाने वाले रास्तों के लिए 'वॉर-रिस्क कवरेज' भी महंगा हो गया है।

कीमतों पर दिखने वाले असर के अलावा, यह संकट मैक्रो इकोनॉमिक स्तर पर भी उत्पादन, विकास, निवेश, रोजगार, निर्यात, आयात, पूंजी प्रवाह और भुगतान संतुलन पर असर डालेगा।

जैसे-जैसे महंगाई की दर बढ़ेगी, समाज के कमजोर तबकों से आने वाली मांग कम हो जाएगी और कारोबारों को अपना उत्पादन घटाना पड़ेगा, जिससे अर्थव्यवस्था की विकास दर धीमी हो जाएगी। कच्चे तेल, एलपीजी वगैरह की कीमतों में वैश्विक बढ़ोतरी से आयात बिल बढ़ जाएगा। खाड़ी देशों को भारत का निर्यात-जैसे चाय, चावल, सब्जियां, मांस, इंजीनियरिंग से जुड़ी चीजें वगैरह- पर बुरा असर पड़ेगा। जिन दूसरे देशों में सप्लाई की दिक्कतें हैं, वहां भी भारत का निर्यात कम हो जाएगा।

ईरान पर अमेरिका और इसराइल के हमलों के बाद से ही अपने देश में एलपीजी संकट लगातार गहराता गया है। अस्थायी युद्धविराम की घोषणा के बाद भी अनिश्चितता बरकरार रहने की वजह से लोग रसोई गैस की कमी से जूझ रहे हैं

> भारत का व्यापार घाटा बढ़ जाएगा, विदेशी मुद्रा बाहर चली जाएगी और ज्यादातर दूसरी मुद्राओं के मुकाबले रुपया कमजोर हो जाएगा। पिछले छह महीनों में, विशुद्ध एफडीआई ऋणात्मक रहा है और पोर्टफोलियो निवेश भी बाहर की ओर गया है

नतीजतन, भारत का व्यापार घाटा बढ़ जाएगा, विदेशी मुद्रा बाहर चली जाएगी और ज्यादातर दूसरी मुद्राओं के मुकाबले रुपया कमजोर हो जाएगा। पिछले छह महीनों में, विशुद्ध एफडीआई (प्रत्यक्ष विदेशी निवेश) ऋणात्मक रहा है और पोर्टफोलियो निवेश भी बाहर की ओर गया है। इसलिए, पूंजी का प्रवाह व्यापार घाटे को पूरा करने में मदद नहीं कर पाएगा।

पश्चिम एशिया में एक करोड़ भारतीय रहते हैं। उनमें से कई वापस लौट रहे हैं और/या अपनी नौकरियां खो रहे हैं। उनके द्वारा भेजे जाने वाले पैसे (रेमिटेंस) और एनआरआई खातों में जमा रकम में कमी का अनुमान है, जिससे पूंजी का प्रवाह और भी कमजोर हो जाएगा। वापस लौटने वाले भारतीय भारत में ही काम की तलाश करेंगे, जिससे भारत में पहले से ही नाज़ुक बेरोजगारी की स्थिति और बदतर हो जाएगी। रुपये की कीमत में गिरावट को लेकर सट्टाबाजारी बढ़ जाएगी। इससे डॉलर का विदेश जाना और भी तेज होगा और रुपया कमजोर होता जाएगा। उदाहरण के लिए, निर्यातक अपनी कमाई वापस लाने में देरी करेंगे, जबकि आयातक अपना आयात बढ़ा देंगे। जैसे-जैसे ज्यादा डॉलर बाहर जाएंगे, बाजार में तरलता की कमी होती जाएगी और ब्याज दरें बढ़ जाएंगी, जिससे निवेश का माहौल और भी खराब हो जाएगा।

*

टैरिफ और युद्धों ने दुनिया के कई हिस्सों में अर्थव्यवस्था को पहले ही हिलाकर रख दिया है। इस ट्रेंड के और भी खराब होने की आशंका है, जिससे निवेश और विकास की गति और धीमी हो जाएगी। सोने और चांदी में निवेश बढ़ जाएगा जिससे असली अर्थव्यवस्था से लेकर शेयर बाजारों में निवेश में और गिरावट आ सकती है।

दुनिया 'स्टैगफ्लेशन' जैसी स्थितियों की ओर बढ़ रही है, जहाँ कीमतें बढ़ रही हैं और विकास रुक गया है। अगर युद्ध जल्द खत्म नहीं होता या और फैलता है, तो दुनिया को मंदी का सामना करना पड़ सकता है।

भारत को अपने रणनीतिक तेल भंडार का इस्तेमाल करना होगा, जिससे कुछ समय तक उसका काम चल सकता है। जी 7 देश भी अपने रणनीतिक भंडारों का इस्तेमाल कर रहे हैं। भारत रूस, अमेरिका और वेनेज़ुएला से ज्यादा कच्चा तेल और गैस ले सकता है, लेकिन कीमतें ज्यादा होंगी। टैरिफ और सप्लाई में रुकावटों को लेकर दुनिया भर के हालात, और देशों द्वारा सप्लाई चेन को छोटा करने और अपनी पूंजी को देश के अंदर ही रखने की कोशिशों को देखते हुए, निर्यात को मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा। भारत को अपने घरेलू बाजार पर ज्यादा निर्भर रहना होगा। विशाल असंगठित क्षेत्र वह अतिरिक्त बाजार उपलब्ध करा सकता है, बशर्ते उसे ज्यादा रोजगार और आमदनी मिले। उदाहरण के लिए, अगर हम विदेशों में कम कपड़े या खाने-पीने की चीजें बेचते हैं, तो बची हुई चीजों को भारत का असंगठित क्षेत्र खपा सकता है, बशर्ते उनके पास ज्यादा आमदनी हो।

नीतिगत बदलाव जो निजी वाहनों के इस्तेमाल को कम करने में मदद करते हैं और सार्वजनिक परिवहन के इस्तेमाल को बढ़ावा देते हैं, उनसे ईंधन की बचत होगी। भारत में भंडार को सुरक्षित रखने के लिए पेट्रोलियम उत्पादों के एक्सपोर्ट पर रोक लगाना मददगार होगा। ऐसी अन्य नीतियां जो अर्थव्यवस्था की ऊर्जा-निर्भरता को कम करती हैं और उसे ऊर्जा संकट के प्रति कम संवेदनशील बनाती हैं, आज समय की जरूरत हैं। ■

अरुण कुमार जाने-माने अर्थशास्त्री और लेखक हैं

कृपया पेज 2 और 6 भी देखें

केरला में 'व्यक्तित्व-पूजा' को समाप्त करने के लिए वोटिंग?

चुनावी नतीजों का इंतजार कर रहे केरला में कांग्रेस के नेतृत्व वाले यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट के प्रमुख चेहरे **वी.डी. सतीशन** एक ऐसे नेता के तौर पर उभरे हैं जिन्होंने हाल के समय के सबसे आक्रामक चुनावी अभियानों में से एक का बड़े संयत होकर सामना किया। **के.ए. शाजी** के साथ बातचीत में सतीशन ने 'व्यक्तित्व-पूजा' की राजनीति, वामपंथ के बदलते स्वरूप और इस बात पर अपने विचार रखे कि उन्हें क्यों लगता है कि केरला एक निर्णायक राजनीतिक बदलाव के कगार पर खड़ा है

आपने इस चुनाव में किसी एक व्यक्ति को जरूरत से ज्यादा उभारने के तरीके पर चिंता जताई थी। इसके बारे में बताइए।

ऐसा केरला में पहले कभी नहीं हुआ। पूरे राज्य में दस हजार से भी ज्यादा होर्डिंग्स पर एक ही व्यक्ति की तस्वीर थी। सड़कें, चौराहे, टेलीविजन, अखबार, डिजिटल प्लेटफॉर्म- हर जगह वही चेहरा। यह सामान्य राजनीतिक प्रचार नहीं था। यह सरकारी मशीनरी और राजनीतिक संसाधनों का इस्तेमाल करके किसी एक व्यक्ति को ही सर्वेसर्वा दिखाने की कोशिश थी। भाजपा ने प्रधानमंत्री के हजारों होर्डिंग लगाकर इसका जवाब देने की कोशिश की। लेकिन हमने अलग रास्ता चुना। हमने सात सौ होर्डिंग के जरिये अपने राष्ट्रीय और राज्य स्तर के नेताओं का सामूहिक चेहरा लोगों के सामने रखा क्योंकि हमारा मानना है कि राजनीति संस्थाओं और लोगों के बारे में होती हैं, न कि किसी एक अकेले व्यक्ति के बारे में।

आप नतीजे को लेकर आश्वस्त लग रहे हैं। इसका आधार?

झूठे सर्वे के जरिये सोच बदलने की कोशिश हो रही है। पिछले लोकसभा चुनाव में ऐसे ही सर्वे में के. सुधाकरन और शफी परम्बिल की हार की भविष्यवाणी की गई थी, पर दोनों जीते। इस बार, हमें बदनाम करने पर पैसे खर्च किए जा रहे हैं। नतीजा पोल खोल देगा। कांग्रेस और यूडीएएफ सरकार बनाएंगे। हम नया केरला बनाएंगे।

आपने यह भी कहा है कि माकपा और भाजपा एक-दूसरे के उतने बड़े विरोधी नहीं, जितना वे दावा करते हैं। कैसे?

माकपा को एक राजनीतिक संदर्भ बिंदु के तौर पर भाजपा की जरूरत है। भाजपा को माकपा की नाकामियों से फायदा होता है। यह इस बात से जाहिर होता है कि कैसे नैरेटिव गढ़े जाते हैं और कैसे हमले किए जाते हैं। चंद उदाहरणों पर गौर करें। फॉरेन कन्ट्रीब्यूशन रेगुलेशन ऐक्ट (एफसीआरए) के मामले में और ईसाई समुदाय के कुछ तबकों को राजनीतिक रूप से अपने साथ जोड़ने की कोशिशों में भाजपा की रणनीति बेनकाब हो गई। सबरीमाला के मुद्दे पर उनका रवैया आखिरकार पिनाराई विजयन को राजनीतिक रूप से फायदा पहुंचाने वाला साबित हुआ। भ्रष्टाचार के मामलों में अहम मौकों पर उन्हें सुरक्षा कवच मुहैया कराए गए। तो, भले ही वे विरोधी नजर आते हों, लेकिन कुछ ऐसी स्थितियां भी हैं जहां उनके हित आपस में मेल खाते हैं। इसका सबसे बड़ा नुकसान सच्ची विपक्षी राजनीति को होता है।

आपको कहते सुना गया है: 'हम ही असली वामपंथी हैं'। इसका मतलब?

वामपंथी सामाजिक न्याय, समानता, कमजोर लोगों की सुरक्षा और लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए खड़े होते हैं। आज हम जो देख रहे हैं, वह है सत्ता का केन्द्रीकरण, विरोध की आवाज को दबाना, पारदर्शिता की कमी और लोगों से बढ़ती दूरी। अगर आप देखें कि रोजगार, पर्यावरण और हाशिये पर पड़े समुदायों के मुद्दों को कौन उठा रहा है, तो अक्सर यह कांग्रेस और यूडीएएफ ही होते हैं। इस लिहाज से, आज हम वामपंथी राजनीति की असली भावना को कायम रख रहे हैं।

क्या आप सहमत हैं कि इस बार का चुनाव प्रचार सिर्फ दिखावे पर आधारित था?

हां। राजनीति को सिर्फ एक तमाशा और छवि-प्रबंधन तक सीमित करने की कोशिश की गई। बेरोजगारी, पर्यावरण का बिगड़ना, तटीय इलाकों की परेशानियां और कृषि संकट जैसे असली मुद्दों पर जरूरी ध्यान नहीं दिया गया। इसके बजाय, हमने जोरदार पीआर और भावनात्मक लामबंदी देखी।

आलोचकों का कहना है कि आपने पर्याप्त आक्रामक तरीके से जवाब नहीं दिया। क्या ऐसा जान-बूझकर किया?

हां। हमने तय किया था कि उकसावा चाहे जैसा भी हो, हम उस स्तर तक नहीं गिरेंगे। हम चुनाव प्रचार की गरिमा और विश्वसनीयता को बचाए रखना चाहते थे। केरला जैसे राज्य में यह बात मायने रखती है और मेरा मानना है कि लोगों ने इस अंतर को पहचाना।

शेष पेज 2 पर ▸

कृपया पेज 3 और 4 भी देखें

केरला में 'व्यक्तित्व-पूजा' को समाप्त करने के लिए वोटिंग?

पेज एक का शेष

वर्तमान सरकार के शासन को लेकर आपकी मुख्य आलोचना क्या है?

शासन-प्रशासन अब सिर्फ घोषणाओं और प्रचार-प्रसार तक सिमट गया है। राज्य पर गंभीर वित्तीय संकट है, देनदारियां बढ़ गई हैं, कल्याणकारी योजनाओं के लिए भुगतान में देरी हो रही है और बड़ी परियोजनाओं में पारदर्शिता का अभाव है। केरला सिर्फ कर्ज-आधारित मॉडलों और अपनी छवि चमकाने की कवायदों के सहारे नहीं बढ़ सकता। हमें जिम्मेदार शासन की जरूरत है।

आपने कहा था कि यह चुनाव दो पैसे वाली ताकतों के खिलाफ लड़ाई है। क्या अब भी उस बात पर कायम हैं?

बिल्कुल। माकपा और भाजपा ने कुछ ही महीनों में करोड़ों रुपये खर्च कर दिए। हमारे पास उतना पैसा नहीं है। इसलिए हमने लोकतांत्रिक लामबंदी पर, लोगों से सीधे जुड़ने पर भरोसा किया। यही यूडीएएफ की ताकत है। इसके अलावा, केरला में कांग्रेस ने पूरी एकता के साथ काम किया। हमारे गठबंधन साथियों ने श्रेष्ठ प्रदर्शन किया। यह सचमुच 'टीम यूडीएएफ' का सामूहिक प्रयास था।

अब जब चुनाव का शोर-शराबा थम चुका है, तो आप इस चुनावी अभियान को कैसे देखते हैं?

मैं बीस साल से विधानसभा का सदस्य हूं। कई चुनाव देखे , लेकिन किसी एक व्यक्ति या उसकी पार्टी को निशाना बनाने वाला, उसे इतना बदनाम करने वाला अभियान कभी नहीं देखा। माकपा ने यूडीएएफ टीम को, और खास तौर पर मुझे निशाना बनाया, क्योंकि मैंने उनकी नाकामियों को उजागर करने का जोरदार अभियान चलाया था। उन्हें भाजपा का समर्थन मिला। यह चरित्र-हनन की सुनियोजित कोशिश थी, जिसे पार्टी के शीर्ष नेतृत्व का शह मिला हुआ था। कार्यकर्ताओं के बीच सोशल मीडिया पर पोस्ट करने के लिए 'कैप्सूल' (तैयार संदेश) बांटे गए। छह महीनों तक हर दिन कम-से-कम बीस कार्ड और दस 'रील' बनाए गए, जिनमें मुझे व्यक्तिगत रूप से निशाना बनाया गया। तथ्यों के साथ उनका जवाब देने पर मुझे 'झूठा' करार दिया गया। लेकिन मैं इसे उस ताकत की बदौलत झेल पाया जो चौथाई सदी से मुझे कांग्रेस कार्यकर्ताओं और नागरिक समाज के समर्थन से मिली। दूसरी ओर, मुख्यमंत्री की बड़ी सावधानी से गढ़ी गई छवि तब दरकने लगी जब उन्होंने कोल्लम में पूछे गए सवालों के जवाब दिए। लोगों को फर्क समझ में आने लगा कि दिखावा और हकीकत में क्या अंतर होता है।

लोगों के हिसाब से इस चुनाव का सबसे बड़ा मुद्दा क्या था?

क्या केरला किसी एक व्यक्ति की पूजा वाली संस्कृति, पैसे और सुनियोजित प्रोपेगैंडा से चलने वाली राजनीति के साथ रह पाएगा, या फिर वह लोकतांत्रिक मूल्यों की वापसी के लिए वोट करेगा? मुझे लगता है कि यह चुनाव इसी बारे में था। केरला को एक खास वामपंथी परंपरा का आखिरी गढ़ माना जाता रहा है, लेकिन वह परंपरा इस नई संस्कृति-किसी एक व्यक्ति के इर्द-गिर्द छवि बनाने और प्रोपेगैंडा करने-को हमेशा बर्दाश्त नहीं कर सकती। मुझे यकीन है कि चुनाव के नतीजों से यह साफ हो जाएगा कि लोग यह बदलाव चाहते हैं।

आपके घोषणापत्र में कल्याणकारी योजनाओं के विस्तार का वादा है। पैसों का इंतजाम कैसे करेंगे?

कल्याणकारी काम एक जिम्मेदारी है। लेकिन, इसके पीछे मजबूत वित्तीय योजना होनी चाहिए। मौजूदा व्यवस्था में काफी कमियां और संसाधनों का गलत बंटवारा है। अगर शासन-प्रशासन में सुधार हो, तो संसाधनों का बेहतर प्रबंधन किया जा सकता है। हमें टिकाऊ निवेश की भी जरूरत है।

वायनाड में पुनर्वास का मुद्दा एक राजनीतिक मुद्दा क्यों बन गया?

पुनर्वास मुख्य रूप से राज्य सरकार की जिम्मेदारी है। इसके बावजूद, कई जगहों से मदद मिली। कर्नाटक की कांग्रेस सरकार ने मुख्यमंत्री राहत कोष में योगदान दिया। विपक्षी विधायकों ने भी योगदान दिया। फंड उपलब्ध है। लेकिन, इसका सिर्फ एक छोटा हिस्सा ही सही तरीके से इस्तेमाल हो पा रहा है। टाउनशिप के निर्माण में देरी हुई। इसका उद्घाटन चुनाव की अधिसूचना से ठीक पहले किया गया। यहां तक कि अब भी, लोगों को ठीक से बसाया नहीं गया है। हमें ज़मीन की पहचान करने और खरीदने में रुकावटों का सामना करना पड़ा। यहां तक कि सरकार को भी जमीन तय करने में एक साल से ज्यादा समय लगा। इसके बावजूद, हम आगे बढ़ रहे हैं। आईयूएमएल ने 53 घर बनाए हैं। हम एआईसीसी और केपीसीसी के फंड का इस्तेमाल कर उन लोगों के लिए घर बनाने की तैयारी कर रहे हैं जो असुरक्षित हालात में रह रहे हैं। स्थानीय कांग्रेस विधायक ने प्रभावित परिवारों के 143 छात्रों की शिक्षा सुनिश्चित की है। असल में, हम सरकारी पुनर्वास की कमियों को पूरा कर रहे हैं।

अगर आप सरकार बनाते हैं, तो आपकी तत्काल की प्राथमिकताएं क्या होंगी?

सबसे पहले शासन में विश्वसनीयता, वित्त में पारदर्शिता और कल्याणकारी योजनाओं का समय पर वितरण। दूसरा, यह सुनिश्चित करना कि संस्थाएं स्वतंत्र रूप से काम करें। जनता का विश्वास फिर से कायम किया जाना चाहिए। तीसरा, आर्थिक और पर्यावरणीय व्यवहार्यता सुनिश्चित करने के लिए बड़ी परियोजनाओं की समीक्षा। ■

युद्ध असली, प्रतिक्रिया नहीं

दुनिया भर की सरकारें संकट से निपटने की तैयारी में। खतरे के बावजूद भारत दे रहा खोखले आश्वासन

आकार पटेल

हम एक ऐसे युद्ध के दूसरे महीने में पहुंच चुके हैं जो अब एक लंबी लड़ाई का रूप लेता जा रहा है। ऐसे में इस पर कुछ टिप्पणियां लिखनी जरूरी हैं। पहली बात यह है कि दुनिया भर के देश अपने नागरिकों को उन हालात के लिए तैयार कर रहे हैं जो भविष्य में उनके सामने आने वाली हैं।

ऑस्ट्रेलिया ने तस्मानिया और विक्टोरिया में पब्लिक ट्रांसपोर्ट को मुफ्त कर दिया है, ताकि नागरिक कारों का इस्तेमाल न करें। मिस्र में दुकानों और रेस्टोरेंट को रात 9 बजे बंद करना जरूरी है। फिलीपींस में अब चार दिन का सप्ताह होता है, और पाकिस्तान में भी ऐसा ही है। म्यांमार सड़कों से कारों को दूर रखने के लिए 'ऑड-ईवन' सिस्टम का इस्तेमाल करता है। स्लोवेनिया में ईंधन खरीदने की सीमा 50 लीटर तय कर दी गई है, और नेपाल ने एलपीजी सिलेंडरों में गैस की मात्रा कम कर दी है। थाईलैंड की सरकार ने लोगों से जैकेट न पहनने को कहा है, ताकि एयर-कंडीशनर ज्यादा तापमान पर चल सकें। बांग्लादेश ने अपने विश्वविद्यालय बंद कर दिए हैं और बिजली कटौती (जिसे हम पुराने जमाने में 'लोड-शेडिंग' कहते थे) लागू कर दी है। दक्षिण सूडान भी बिजली के इस्तेमाल को सीमित कर रहा है। श्रीलंका ने बुधवार को सार्वजनिक छुट्टी घोषित कर दी है। यह सूची और भी लंबी है।

भारत में कोई कदम नहीं उठाया गया है। इसके दो कारण हैं। पहला, सरकार को लगता है, भले उसने यह बात साफ तौर पर न कही हो—कि असल में कोई समस्या है ही नहीं। उसने हमें बताया है कि लोगों को जिस कमी का सामना करना पड़ रहा है, वह घबराहट का नतीजा है; और अगर भारतीयों में फैली यह बेवजह की घबराहट शांत हो जाए, तो हालात अपने-आप सामान्य हो जाएंगे। दूसरा कारण यह है कि हमारी सरकार का अनुमान है कि खाड़ी देशों से हम जिन चीजों का आयात करते हैं—जैसे ईंधन, गैस, उर्वरक के लिए कच्चा माल वगैरह—उनका हमारे पास पर्याप्त भंडार मौजूद है। जाहिर है, 'पर्याप्त भंडार' एक ऐसा शब्द है जिसकी कोई पक्की परिभाषा नहीं है, क्योंकि किसी को नहीं पता कि यह युद्ध कब तक चलेगा।

ऑटो-रिक्शा की कतारों और मजदूरों के बड़े पैमाने पर पलायन के रूप में जो देख रहे हैं, उससे यह मेल नहीं खाता। हम देखेंगे कि जैसे-जैसे ईरान डटा रहता है, हालात कैसे बदलते हैं। तेल कारोबार से जुड़े लोगों का कहना है कि इस हफ्ते से तेल की असल कमी का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि युद्ध शुरू होने के समय जो जहाज पानी में थे, उनसे माल उतारा जा चुका है और अब कोई नए जहाज नहीं आ रहे हैं।

एक और अवलोकन यह है कि अमेरिका ने ईरान पर हमला किया है, जबकि उसकी कांग्रेस—यानी वहां की संसद—ने युद्ध की घोषणा नहीं की है। यह बात क्यों महत्वपूर्ण है? जब अमेरिकी संविधान पर बहस चल रही थी, तो उसके संस्थापकों का मानना था कि किसी एक व्यक्ति द्वारा युद्ध की घोषणा करने की क्षमता ही एक राजा को एक चुने हुए नेता से अलग करती है। राष्ट्रपति हिंसा को निर्देशित और प्रबंधित तो कर सकते थे, लेकिन औपचारिक घोषणा के बाद ही; युद्ध की घोषणा करने की जिम्मेदारी उठाने का काम कांग्रेस या संसद का था। ईरान युद्ध के दौरान शक्तियों के इस महत्वपूर्ण विभाजन का काफी नुकसान हुआ है, और यदि किसी देश पर आक्रमण करने की क्षमता ही राजा और अमेरिकी राष्ट्रपति के बीच का अंतर है, तो अब उन दोनों में कोई फर्क नहीं रह गया है।

सरकार के पर्याप्त ईंधन भंडार के दावों को झुठलाती पेट्रोल पंप पर लगी कतार

दिलचस्प यह है कि ये कंजर्वेटिव लोग ही हैं—जो आम तौर पर खुद को संविधान का पालन करने वाला मानते हैं—जो इस तरह के हालात चाहते हैं। एक और वजह जिससे यह बात जिक्र करने लायक हो जाती है, वह यह है कि डॉनल्ड ट्रंप एक बहुत ही अप्रत्याशित राष्ट्रपति हैं। वह कह सकते हैं। उन्होंने कहा भी कि युद्ध 'पूरी तरह खत्म' हो चुका है, लेकिन फिर भी जारी रहेगा। बातचीत आगे बढ़ रही है। अगले ही पल कह देते हैं कि बात करने के लिए कोई बचा ही नहीं है, क्योंकि अमेरिका ने ईरान के सभी नेताओं को मार डाला है।

वह ईरान से होर्मुज खोलने की मांग करते हैं, कहते हैं कि अमेरिका वहां से हट जाएगा और इसे खोलना अन्य देशों की ज़िम्मेदारी है। अमेरिकी जनता, उसका मीडिया और लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं— सभी सहमत नजर आते हैं। यही वजह है कि ट्रंप जैसा कर रहे हैं, वैसा ही करते चले जा रहे हैं।

> कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं जो दुनिया को नया रूप दे देती हैं और उसे हमेशा के लिए बदल देती हैं। ईरान युद्ध भी इतिहास का ऐसा ही एक मोड़ है

तीसरी बात भारत की भूमिका के बारे में है। हमारे कई वाट्सएप ग्रुप इस बात पर पक्का यकीन रखते हैं कि जवाहरलाल नेहरू ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में हमारी सीट गंवा दी थी। इस सोच का आधार क्या है, यह तो साफ नहीं है; लेकिन शायद इसकी वजह यह हो सकती है कि नेहरू अपनी सीट रिजर्व करने के लिए उस पर अपना रुमाल रखना भूल गए थे (या शायद उन्होंने रुमाल फेंका, लेकिन वह सीट पर गिरा ही नहीं) — या फिर कुछ इसी तरह की कोई और बात। लेकिन मान लेते हैं कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में हमारे पास सचमुच एक स्थायी सीट थी। तो फारस की खाड़ी में चल रहे युद्ध से निपटने के लिए उसका इस्तेमाल कैसे करते?

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के सदस्यों या इसके सीट धारकों के पास एक मुख्य शक्ति होती है: वीटो, जिसका अर्थ है वोट के लिए आने वाले प्रस्तावों को अस्वीकार करने का अधिकार। यूनाइटेड किंगडम (यूके) के पास यह अधिकार है। उसका कहना है कि वह इस युद्ध में शामिल नहीं है। उसने अपनी सीट का इस्तेमाल करके अब तक क्या किया है और वह आगे क्या कर सकता है? ऐसा कुछ भी नहीं जिसके बारे में सोचा जा सके; यही कारण है कि इस समय दुनिया संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की ओर नहीं देख रही है।

भारत सहित कोई भी देश जो कुछ भी कर सकता है, वह उन पहलों के माध्यम से ही संभव होगा जिनके द्वारा वह अन्य देशों को लामबंद कर सके। जो किनारे खड़े रहना चाहते हैं, उनसे कोई फर्क नहीं पड़ेगा—चाहे वे कीमती वीटो को अपने पास ही रखे रहें या नहीं। वे तो बस तमाशबीन हैं।

मुझे लगता है कि शायद यह आखिरी बार नहीं है जब इस लेख में ईरान युद्ध का जिक्र होगा। कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं जो दुनिया को नया रूप दे देती हैं और उसके काम करने के तरीके को हमेशा के लिए बदल देती हैं। यह भी ऐसी ही एक घटना है, और अमेरिका के 'राष्ट्रपति-राजा' ने हम सभी को इस नई हकीकत में धकेल दिया है—चाहे हमें यह पसंद हो या न हो, और चाहे हम इसे चाहें या न चाहें। ■

न्याय की कसौटी पर कितने खरे न्यायाधीश

न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा के चुनिंदा फैसलों का विवरण और व्याख्या करती यह पुस्तक हमारी न्यायिक व्यवस्था पर भी रोशनी डालती है

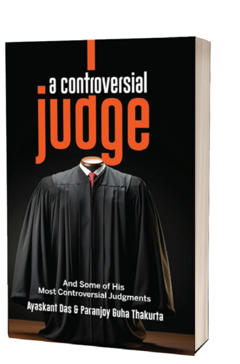

ए कंट्रोवर्शियल जज

लेखक	अयस्कान्त दास और परंजॉय गुहा ठाकुरता
प्रकाशक	परंजॉय गुहा ठाकुरता
वर्ष	2025

अभय शुक्ला

इस विचारोत्तेजक किताब पर चर्चा शुरू करने से पहले इसके बारे में दो बातें कहना जरूरी है। पहली, यह किताब इस बात की पुष्टि करती है कि भारत में साहसी पत्रकारिता और लेखन आज भी जिंदा है, भले ही ज्यादातर मीडिया ने शर्मनाक तरीके से सत्ता और व्यापार के आगे घुटने टेक दिए हों। दूसरी, यह किताब हमारी उच्च न्यायपालिका के बारे में कुछ परेशान करने वाले सवाल उठाती है। ये सवाल किसी इल्जाम पर नहीं बल्कि उन तथ्यों पर आधारित हैं जो सार्वजनिक तौर पर उपलब्ध हैं और जिनकी आसानी से पुष्टि की जा सकती है। लेखक हमारी न्यायिक व्यवस्था के 'कंकाल' को उसके तमाम जख्मों के साथ सामने रख देते हैं, और फैसला पाठक पर छोड़ देते हैं कि वह इस बारे में क्या राय बनाता है।

इस कहानी के केन्द्र में हैं जस्टिस अरुण मिश्रा। उन्हें जुलाई 2014 में नरेन्द्र मोदी सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में नियुक्त किया था, जबकि पिछली यूपीए सरकार ने दो बार उनकी नियुक्ति के प्रस्ताव को खारिज कर दिया था। सितंबर 2020 में रिटायर होने के बाद जून 2021 में उन्हें एनएचआरसी का अध्यक्ष बनाया गया। यहां उनका कार्यकाल कुछ खास नहीं रहा: इतिहास में पहली बार, एनएचआरसी को जीएएनएचआरसी (राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोगों के वैश्विक गठबंधन) ने 'श्रेणी ए' से हटाकर 'श्रेणी बी' में डाल दिया गया। इसकी वजह थी- मानवाधिकार उल्लंघन की जांच में विफलता और आयोग का पुलिस-केन्द्रित रवैया। जनवरी 2025 में वह रिटायर हो गए और फिर उन्हें बीसीसीआई का लोकपाल और आचार अधिकारी नियुक्त कर दिया गया।

इस किताब में उनके चौदह विवादित फैसलों का इतनी बारीकी से विश्लेषण किया गया है, जिसकी हिम्मत न तो कभी मीडिया ने की और न किसी कानूनी जानकार ने। इनमें से हर फैसले को कोई भी समझदार इंसान कमजोर पाएगा; उसे लगेगा कि वह हाईकोर्ट के फैसलों को नजरअंदाज करने के आदी थे, पिछले फैसलों और मिसालों को अपनी कानूनी व्याख्या के हिसाब से तोड़-मरोड़कर पेश करते थे, मानवाधिकारों के प्रति उनमें सहानुभूति की पूरी तरह कमी थी, कुछ मामलों में 'हितों के टकराव' को मानने से इनकार कर देते थे और सुनवाई से अलग नहीं करते थे; और वह सरकार, अमीरों और ताकतवरों के पक्ष में फैसले सुनाते थे, जबकि इसके विपरीत फैसला देने के काफी सबूत मौजूद होते थे।

लेखकों ने इन मामलों में शायद ही कभी अपनी राय दी। वे तथ्यों को बारीकी के साथ सामने रखते हैं और उनके साथ उद्धरण और संदर्भ दिए गए हैं और नतीजा निकालने का काम पाठकों पर छोड़ देते हैं।

सबसे पहले तो इस पर ध्यान जाता है कि जस्टिस मिश्रा की लगभग हर मामले में सरकार या अभियोजन पक्ष के नजरिये का पक्ष लेने की प्रवृत्ति रही। चाहे वह एल्गार परिषद का मामला हो, जिसमें गौतम नवलखा जैसे विद्वान-ऐक्टिविस्ट को बिना किसी ठोस वजह एनआईए (राष्ट्रीय जांच एजेंसी) द्वारा दिल्ली हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र से बाहर ले जाने की अनुमति दे दी गई, सिर्फ इसलिए कि उन्हें अगले कुछ और सालों तक जमानत न मिल सके; या फिर गुजरात कैडर के आईपीएस अधिकारी संजीव भट्ट का मामला हो जो 2002 के दंगों के दौरान नरेन्द्र मोदी (गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री) की एक बैठक का विवरण उजागर करके सत्ता के कोप का शिकार हो गए थे; और जिन्होंने यह आरोप लगाया था कि मोदी और शाह ने उन पर 'गुजरात के पूर्व गृहमंत्री हरेन पंड्या की हत्या पर रिपोर्ट वापस लेने' का दबाव डाला था।

गुजरात दंगों की जांच के लिए एसआईटी गठित करने की भट्ट की रिट याचिका को सुप्रीम कोर्ट में जस्टिस मिश्रा ने खारिज कर दिया। उन्होंने भट्ट पर अदालत को गुमराह करने, सच छिपाने और झूठ फैलाने का आरोप लगाया और कहा कि वह अदालत में 'साफ हाथ' (नेक इरादे) से नहीं आए थे। लेखकों का कहना है कि इस फैसले ने भट्ट का भविष्य तय कर दिया: इसके बाद उन्हें एक दूसरे मामले में दोषी ठहराया गया और अब वह आजीवन कारावास काट रहे हैं।

जज लोया के केस में उन्होंने अपनी ही बिरादरी के एक सदस्य की रहस्यमयी मौत की कोर्ट की निगरानी में जांच की इजाजत देने से मना कर दिया था। (लोया एक ऐसे केस की सुनवाई कर रहे थे जिसमें गृहमंत्री अमित शाह एक मर्डर/फर्जी एनकाउंटर के आरोपी थे)। सहारा-बिड़ला रिश्वत केस में, उन्होंने सबूत के तौर पर हस्तलिखित नोट लेने से मना कर दिया था जिसमें रिश्वत का पेमेंट रिकॉर्ड किया गया था (इसमें कथित तौर पर गुजरात के तत्कालीन सीएम मोदी को दिया गया पेमेंट भी शामिल था)। यह अस्वीकृति इस बात की तकनीकी परिभाषा पर आधारित थी कि 'डायरी' किसे माना जाए! जस्टिस मिश्रा ने फैसला दिया कि चूंकि कथित भुगतान कागज की अलग-अलग शीटों पर दर्ज थे और उनमें कोई स्पाइरल या पक्की बाइंडिंग नहीं थी, इसलिए उन्हें सबूत के तौर पर स्वीकार नहीं किया जा सकता! जाहिर है, सबूत के इस अहम हिस्से के अभाव में यह पूरा मामला ही बिखर गया।

वन अधिकार अधिनियम (एफआरए) को दी गई संवैधानिक चुनौती की सुनवाई करते हुए, जिसका उद्देश्य पारंपरिक वनवासियों को जमीन का अधिकार देना था, अरुण मिश्रा ने इसमें शामिल संवैधानिक मुद्दों पर ध्यान देने के बजाय, दूसरी ही सुनवाई में लाखों आदिवासियों को बेदखल करने का एकतरफा आदेश दे दिया; और ऐसा करते समय उन्होंने यह भी सुनिश्चित नहीं किया कि आदिवासियों के दावों पर कानून के अनुसार फैसला हुआ या नहीं। जब दिल्ली की भाजपा सरकार ने (जिसने अपने ही कानून का बचाव करने के लिए कुछ नहीं किया था) चुनावी नतीजों के डर से अदालत से अपने फैसले पर पुनर्विचार का अनुरोध किया, तब जाकर 2020 में जस्टिस मिश्रा ने अपने आदेश पर रोक लगाई। यह मामला आज भी लटका है।

सत्ता का इस्तेमाल लाठी की तरह करते हुए, माननीय न्यायाधीश ने जाने-माने एक्टिविस्ट और सुप्रीम कोर्ट के वकील प्रशांत भूषण के दो ट्वीट का स्वतः संज्ञान लिया। इनमें उन्होंने लोकतंत्र को खत्म करने में चार पूर्व मुख्य न्यायाधीशों की भूमिका के बारे में बात की थी, जिसके आधार पर न्यायाधीश ने उन्हें 'अदालत की अवमानना' का दोषी ठहराया। यह तब हुआ, जब अटॉर्नी जनरल और कानून के कई जानकारों और नागरिक समाज के लोगों ने इसके विपरीत सलाह दी थी। इस फैसले ने 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के रक्षक' के तौर पर सुप्रीम कोर्ट की छवि धूमिल कर दी।

यह किताब बताती है कि रिटायरमेंट से पहले के 18 महीनों में जस्टिस मिश्रा ने अडानी ग्रुप और रिलायंस इंडस्ट्रीज के पक्ष में आठ फैसले दिए; जिनसे इन समूहों को हजारों करोड़ रुपये का फायदा हुआ और टेलीकॉम सेक्टर असल में दो कंपनियों के कब्जे में सिमट गया। एक बार फिर, असली पेंच कानूनों, तथ्यों और पूर्व फैसलों की व्याख्या के तरीके में है। फैसलों की बारीकियों में जाए बिना फैसलों को निपटाने का समय दिलचस्प है। जैसा कि इयान फ्लेमिंग ने कहा था: 'एक बार हो तो महज एक घटना है, दो बार हो तो इत्तेफाक, लेकिन तीन बार हो तो यह दुश्मन की साजिश है!'

इस किताब में जिन दूसरे मामलों/फैसलों का विश्लेषण किया गया है, वे जस्टिस मिश्रा की साख पर उठती शंकाओं को और मजबूत करते हैं। अफसोस की बात है कि इस समीक्षा में उन सब पर चर्चा मुमकिन नहीं, लेकिन इतना जरूर है कि किताब के आखिर तक आते-आते, कोई भी व्यक्ति चार परेशान करने वाले सवालों से जूझने से खुद को रोक नहीं पाएगा। पहला, क्या हम 'न्यायपालिका की स्वतंत्रता' वाली बात को जरूरत से ज्यादा बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहे हैं, यह देखते हुए कि उन्हें जो लगभग पूरी तरह से छूट दी गई है, वह अपने तय मकसद को पूरा नहीं कर पा रही है? दूसरा, यह रोजाना साबित हो रहा है कि बिना किसी जवाबदेही के न्यायिक स्वतंत्रता सिर्फ न्यायिक तानाशाही को ही जन्म दे सकती है। इसलिए, क्या हमें दूसरे सिद्धांत-'न्यायपालिका की जवाबदेही'- पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए?

तीसरा, क्या जिस तरह हम अपने जजों को नियुक्त और प्रोन्नत करते हैं, उससे देश को निराशा हो रही है? चौथा, क्या रिटायर्ड जजों की रीएम्प्लॉयमेंट पर पूरी तरह बैन नहीं लगा देना चाहिए, क्योंकि इससे उनकी निष्ठा प्रभावित होती है? ये मुश्किल सवाल हैं, लेकिन इन्हें जल्द से जल्द सुलझाना होगा। अगर इस किताब के चौदह फैसले पढ़ने वाले को इस पर सोचने पर मजबूर करते हैं, तो यह अपना काम कर चुकी होगी। ■

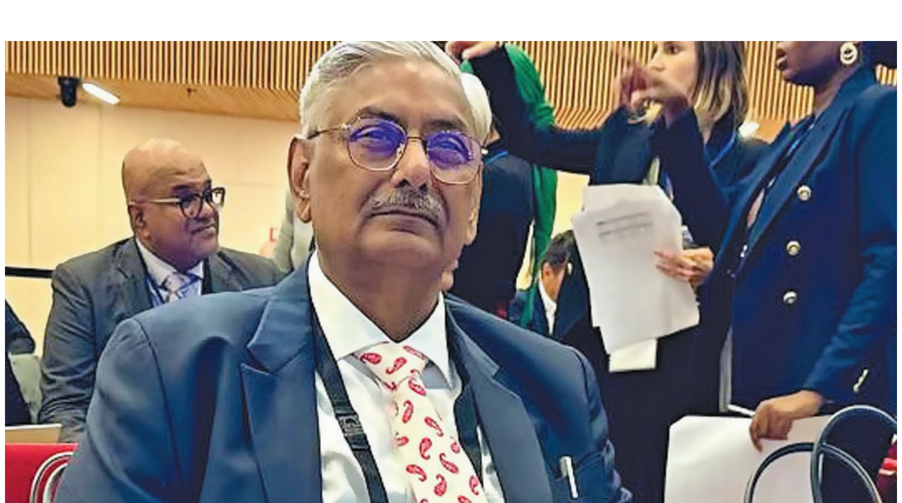

> किताब में चौदह फैसलों का इतनी बारीकी से विश्लेषण है जिसकी हिम्मत न तो कभी मीडिया ने की और न किसी कानूनी जानकार ने। अरुण मिश्रा मिसालों को अपनी कानूनी व्याख्या के हिसाब से तोड़-मरोड़कर पेश करते थे

अभय शुक्ला सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी हैं यह avayshukla.blogspot.com से लिए उनके लेख का संपादित रूप है

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

साथ की कीमत और भाजपा की रणनीति

अन्नाद्रमुक और भाजपा के भीतर की कलह खुलकर सामने आ चुकी है। यह बताती है कि समस्या की जड़ें गहरी हैं

के.ए. शाजी

मंदिर नगरी मदुरै के बाहरी इलाके में स्थित राजनीतिक रूप से संवेदनशील विधानसभा क्षेत्र तिरुपरनकुंड्रम में अन्नाद्रमुक-भाजपा गठबंधन का तनाव सामने आ गया। अन्नाद्रमुक की यह पारंपरिक सीट तब विवाद का केन्द्र बन गई जब पार्टी ने इसे भाजपा को देने से इनकार कर दिया। हाल ही में, पुरानी परंपराओं-जिसमें पशु बलि और पवित्र ज्योति को दूसरी जगह ले जाना शामिल था- को लेकर उठे स्थानीय विवादों को भाजपा ने हिन्दू भावनाओं को भड़काने के लिए सांप्रदायिक रंग दे दिया। फिर भी, जब अंतिम सूची तैयार हुई, तो अन्नाद्रमुक ने यह सीट अपने पास ही रखी और क्षेत्र में गहरी पकड़ रखने वाले नेता वीवी राजन चेल्लप्पा को उम्मीदवार बनाया।

अन्नाद्रमुक के सामाजिक समीकरण का हिस्सा रहे मुसलमान भी इस गठबंधन से असहज हैं। जहां एक ओर भाजपा, अन्नाद्रमुक के पारंपरिक वोटों का फायदा उठाते हुए अपना स्वतंत्र राजनीतिक आधार बनाने की कोशिश कर रही है, वहीं तिरुपरनकुंड्रम में अन्नाद्रमुक कार्यकर्ता दबी जबान मानते हैं कि भाजपा पूरा जोर नहीं लगा रही। बूथ-स्तर पर तालमेल ठीक नहीं है और कार्यकर्ताओं को जुटाने में वह तत्परता नजर नहीं आ रही जिसकी उम्मीद इतने अहम चुनावी मुकाबले में थी।

पूरे तमिलनाडु में इस रिश्ते में बढ़ती असहजता दिख रही है। सीटों के मामले में अन्नाद्रमुक अब भी बड़ी पार्टी है, लेकिन भाजपा धीरे-धीरे दायरा बढ़ा रही है। यह असंतुलन पश्चिमी तमिलनाडु में ज्यादा दिखता है, जिसे अन्नाद्रमुक का गढ़ माना जाता रहा है। कोयंबटूर, इरोड, सेलम और नमक्कल जैसे जिलों में भाजपा का प्रभाव बढ़ रहा है। पार्टी के जाने-पहचाने चेहरों में से एक पूर्व आईपीएस अधिकारी और तमिलनाडु भाजपा अध्यक्ष के. अन्नामलाई ने सार्वजनिक तौर पर तो अनुशासन बनाए रखा है, लेकिन सूत्रों के मुताबिक पार्टी में बेचैनी है। जहां नेता जातियों और शहरी मतदाताओं के बीच बढ़ते जनाधार पर खुलकर बात करते हैं, वहीं वे सीटों के बंटवारे पर नाराजगी भी जताते हैं।

चेन्नई के राजनीतिक पर्यवेक्षक और 'सोशल साइंस कलेक्टिव' के पदाधिकारी एम. तिरुवेंकडम कहते हैं, 'भाजपा किसी गठबंधन में सिर्फ जूनियर पार्टनर बने रहने के लिए शामिल नहीं होती। वह गठबंधन को एक एंट्री पॉइंट के तौर पर इस्तेमाल करती है, संगठन खड़ा करती है, और धीरे-धीरे प्रभाव बढ़ाती है। तमिलनाडु में हम अभी इसी प्रक्रिया का शुरुआती दौर देख रहे हैं।' इसके अलावा, दोनों में गहरे वैचारिक मतभेद हैं। तमिलनाडु का राजनीतिक परिदृश्य, जिसकी जड़ें द्रविड़ आंदोलन में हैं, ऐतिहासिक रूप से भाजपा की विचारधारा के खिलाफ है।

अन्नाद्रमुक के लिए यह दुविधा खड़ी करता है। विधानसभा चुनावों से पहले भाजपा के नेतृत्व वाले गठबंधन में उसकी वापसी 2024 के लोकसभा चुनावों में खराब प्रदर्शन की वजह से हुई। हालांकि, इस गठबंधन ने पार्टी की एक स्पष्ट वैचारिक स्थिति बताने की क्षमता को मुश्किल बना दिया है - खासकर धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय जैसे मुद्दों पर, जो कभी द्रविड़ राजनीति के केन्द्र में थे। तिरुपरनकुंड्रम जैसी सीटों पर यह तनाव एक सतर्क संदेश के रूप में सामने आता है - जो न तो भाजपा के वैचारिक नजरिये को पूरी तरह अपनाता है और न उसका स्पष्ट खंडन करता है। नतीजतन, मुसलमान मतदाता पार्टी से छिटक रहे हैं, जबकि पारंपरिक समर्थकों का एक हिस्सा पार्टी की दिशा को लेकर अनिश्चित है।

तमिलनाडु के पुदुकोट्टई में एक कार्यक्रम के दौरान अन्नाद्रमुक नेताओं के साथ केन्द्रीय गृह मंत्री अमित शाह

जयललिता के दौरान भाजपा के साथ गठबंधन रणनीतिक थे। जया ने सुनिश्चित किया कि वैचारिक सीमाएं बरकरार रहें। चेन्नई के राजनीतिक विश्लेषक एस. सुंदरराजन कहते हैं, 'जयललिता ने भाजपा से जुड़ाव रखा, लेकिन अपनी जगह नहीं छोड़ी। आज हम जो देख रहे हैं, वह जुड़ाव नहीं, समझौता है।' सालों के अंदरूनी कलह के बाद एडप्पादी के. पलानीस्वामी के नेतृत्व में जो एकजुटता हासिल हुई है, वह अन्नाद्रमुक के लिए राजनीतिक आत्मविश्वास में नहीं बदल पाई है। पूर्व समन्वयक ओ. पन्नीरसेल्वम को पार्टी से निकालना और वी.के. शशिकला तथा टी.टी.वी. दिनाकरन का लगातार बना साया, संकेत है कि सत्ता का केन्द्रीकरण हुआ, लेकिन पार्टी में एकता नहीं आई।

जबकि भाजपा लंबी रणनीति पर काम कर रही है। तमिलनाडु में उसकी रणनीति गठबंधन के जरिये प्रवेश करना, अपनी ताकत बढ़ाना, खास जाति समूहों पर ध्यान केन्द्रित करना और नैरेटिव का रुख बदलना है। यहां तक कि जिन सीटों पर वह चुनाव नहीं लड़ती, वहां भी उसकी विचारधारा की छाप दिखने लगी है। तिरुपरनकुंड्रम इसका उदाहरण है, जहां भाजपा ने राजनीतिक चर्चा को प्रभावित किया है।

> भाजपा किसी गठबंधन में सिर्फ जूनियर पार्टनर बने रहने के लिए शामिल नहीं होती। वह इसे बतौर एंट्री पॉइंट इस्तेमाल करती है, संगठन खड़ा करती है, और धीरे-धीरे प्रभाव बढ़ाती है। तमिलनाडु में इसी का शुरुआती दौर दिख रहा है

नेताओं का एक पार्टी से दूसरी पार्टी में जाना इस बदलाव को और स्पष्ट करता है। तमिलनाडु भाजपा अध्यक्ष के. नैनार नागेंद्रन, जो पहले अन्नाद्रमुक में मंत्री थे, बड़े बदलाव का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके तहत अन्नाद्रमुक के भीतर अनिश्चितता का सामना कर रहे नेता और कार्यकर्ता पाला बदल रहे हैं। चेन्नई के राजनीतिक विश्लेषक और मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज के रिटायर्ड फैकल्टी सी. लक्ष्मणन कहते हैं, 'असली कहानी शायद चुनाव के बाद शुरू हो। अगर अन्नाद्रमुक मजबूत चुनौती नहीं पेश कर पाती है, तो भाजपा ज्यादा मुखर विपक्षी ताकत के तौर पर उभरेगी। तभी हम बदलती राजनीतिक निष्ठा देख रहे हैं।' द्रमुक की रणनीति पलानीस्वामी को 'तमिलनाडु के नीतीश कुमार' के तौर पर पेश करने की है। इसकी गूंज को समझने के लिए, देखना होगा कि बिहार में नीतीश की राजनीति ने कैसे भाजपा के लगातार विस्तार के हालात बनाए, और वह भी बिना खुद की सत्ता को तुरंत कमजोर किए।

नीतीश पहली बार 2005 में भाजपा के साथ गठबंधन करके सत्ता में आए थे। उन्होंने पिछड़े वर्गों के बीच अपने समर्थन को भाजपा के उच्च वर्गों और शहरी मतदाताओं के बीच मौजूद आधार के साथ जोड़ा। समय के साथ उन्होंने लक्षित कल्याण और शासकीय कदमों के जरिये 'अत्यंत पिछड़े वर्गों' और हाशिये के समूहों को शामिल करके गठबंधन का विस्तार किया। हालांकि, इस गठबंधन के दायरे में रहते हुए यह व्यापक जनाधार भाजपा के लिए भी सुलभ हो गया। उनके बाद के दांव-पेच - 2013 में भाजपा से अलग होना, 2017 में वापस आना, 2022 में फिर बाहर निकलना और 2024 में दोबारा शामिल होना- ने बिहार के राजनीतिक समीकरणों को बार-बार बदला। फिर भी भाजपा अपनी स्वतंत्र सांगठनिक शक्ति और वैचारिक उपस्थिति बढ़ाती रही और अंततः गठबंधन में एक प्रमुख ताकत के रूप में उभरकर सामने आई। यही 'नीतीश मॉडल' का सार है। एक क्षेत्रीय नेता अपना पद और अपनी पहचान तो बनाए रखता है, लेकिन इसका दीर्घकालिक लाभ एक राष्ट्रीय पार्टी को मिलता है।

तमिलनाडु में भी शायद इसी प्रक्रिया के शुरुआती चरण दिख रहे हैं। भले पलानीस्वामी, नीतीश की तरह बार-बार पाला न बदलें, लेकिन अनजाने में ही सही, वह वैसी ही भूमिका निभा सकते हैं। हालांकि, नीतीश के साथ इस तुलना की भी कुछ सीमाएं हैं। नीतीश की असली ताकत उनकी वह काबिलियत थी, जिससे वे अलग-अलग जातियों को मिलाकर एक ऐसा मजबूत गठबंधन खड़ा कर पाते थे, जिसे भाजपा आसानी से तोड़ नहीं पाती थी। लंबे समय तक वह इस गठबंधन के आधार बने रहे, न कि उस पर निर्भर रहने वाले। अन्नाद्रमुक के भीतर पलानीस्वामी का उभरना, जयललिता के निधन के बाद संगठन के भीतर की रणनीतिक चालों का ही नतीजा था। उनकी ताकत उनका प्रशासनिक अनुभव और पार्टी को स्थिरता देने में उनकी भूमिका है। लेकिन उनमें पूरे राज्य को जोड़ने वाला भावनात्मक जुड़ाव नहीं, जो एमजी रामचंद्रन और जया, दोनों की पहचान था; और उनके नेतृत्व के प्रति पार्टी कार्यकर्ताओं में वैसी गहरी निष्ठा भी नहीं दिखती।

चुनावी राजनीति और पब्लिक पॉलिसी क्षेत्र में अपने काम के लिए जाने जाने वाले चेन्नई के विश्लेषक सुमंत रमन इस फर्क की ओर इशारा करते हैं- 'नीतीश ने ऐसा राजनीतिक आधार बनाया जिसकी भाजपा को जरूरत थी। तमिलनाडु में समीकरण बन रहे हैं। अन्नाद्रमुक के पास विरासती आधार है, लेकिन बंटा हुआ। इसी से यह गठबंधन शुरू से ही ढांचागत रूप से असमान है।'

द्रमुक का पलानीस्वामी को नीतीश के तौर पर पेश करना, तालमेल बिठाने में आने वाले जोखिमों को उजागर करता है। चुनौती यह है कि नीतीश वाले रास्ते पर न चला जाए- एक ऐसा रास्ता जहां कोई क्षेत्रीय पार्टी, थोड़े समय की स्थिरता की चाह में, राजनीतिक सत्ता में लंबे समय के बदलाव के हालात पैदा कर देती है। यह संतुलन मुश्किल है। तमिलनाडु की राजनीति में, यह न सिर्फ अन्नाद्रमुक के भविष्य को, बल्कि विपक्षी राजनीति के स्वरूप को भी तय कर सकता है। ■

जब उलटी पड़ जाती है बहुसंख्यकवादी कट्टरता

एफसीआरए संशोधनों और जॉर्ज के बयान ने भाजपा के अभियान को लगाया पलीता

के. ए. शाजी

केरला विधानसभा चुनाव में भाजपा को एक बार फिर उसी जानी-पहचानी बाधा का सामना करना पड़ा, ठीक उस समय जब उसे लगा था कि उसने इस बाधा को तोड़ना शुरू कर दिया है। इस बार, पार्टी मध्य केरला में असामान्य रूप से ऊंची उम्मीदों के साथ चुनावी मैदान में उतरी थी - एक ऐसा क्षेत्र जहां ईसाई वोटों में जरा-सा भी बदलाव कई अहम सीटों के नतीजों को बदल सकता था। उसे जरूरत थी एक निर्णायक सफलता की; लेकिन उसे सामना करना पड़ा एक गहरी दरार का।

इस दरार केन्द्र में खड़े हो गए पी.सी. जॉर्ज। वह कोट्टायम के पूंजार से भाजपा के विवादित उम्मीदवार हैं। वह अपनी तीखी बयानबाजी के लिए जाने जाते हैं। उनकी टिप्पणियों ने एक पहले से ही नाज़ुक जनसंपर्क अभियान को और भी उलझा दिया - जहां पादरी वर्ग का एक हिस्सा कभी-कभी इस अभियान के प्रति कुछ हद तक सकारात्मक रुख अपनाता रहा है, वहीं आम ईसाई जनता ने बहुसंख्यकवादी राजनीति का बड़े पैमाने पर विरोध किया है। जॉर्ज पहले यूडीएफ में थे, फिर एलडीएफ में और अब भाजपा में हैं। उन्होंने चुनाव प्रचार के एक बेहद अहम मोड़ पर सरेआम ईसाई बिशपों पर हमला बोल दिया। उन्होंने कहा कि ईसाई आबादी का 'महज दो प्रतिशत' हैं, और 'हिन्दू बहुसंख्यक' वर्ग के साथ उनकी सौदेबाजी अनुचित है। उन्होंने पादरी वर्ग के कुछ हिस्सों पर विदेशी फंड से लाभ उठाते हुए 'दोहरी चाल' चलने का आरोप लगाया, और चर्च संस्थानों तथा उनके वित्तीय लेन-देन की कड़ी जांच की मांग की।

ये टिप्पणियां ऐसे समय में सामने आईं जब चुनावी माहौल पहले से ही काफी गरमाया हुआ था, और विदेशी अंशदान विनियमन अधिनियम (एफसीआरए) - जो भारत में संस्थाओं को मिलने वाली विदेशी फंडिंग को नियंत्रित करने वाला केन्द्रीय कानून है - को लेकर चिंताएं लगातार बढ़ रही थीं। इस विवाद की जड़ में एफसीआरए संशोधन विधेयक 2026 का एक प्रावधान है, जो केन्द्र सरकार को यह अधिकार देता है कि यदि किसी संगठन का एफसीआरए पंजीकरण रद्द हो जाता है, उसकी समय-सीमा समाप्त हो जाती है, उसे स्वेच्छा से लौटा दिया जाता है, या यहां तक कि उसके नवीनीकरण में देरी भी हो जाती है, तो वह विदेशी फंड से निर्मित संपत्तियों को अपने अधिकार में ले ले। विवादों में उलझी संस्थाओं के लिए यह प्रावधान चिंताजनक है। मुकदमों, प्रशासनिक बाधाओं या यहां तक कि तकनीकी खामियों के कारण होने वाली देरी से, संभावित रूप से संपत्तियों और संस्थाओं पर सरकार का कब्जा हो सकता है। (देखेंः विदेशी फंड पर कब्जा, संडे नवजीवन, 5 अप्रैल 2026)

> यह मुमकिन है कि भाजपा आने वाले समय में ईसाइयों को अपने साथ जोड़ सके, लेकिन चुनाव प्रचार की ग़लतियां शायद इस बार उस पर भारी पड़ें

केरला के ईसाइयों, विशेष रूप से कैथोलिकों के लिए, एफसीआरए सीधे तौर पर एक विशाल संस्थागत नेटवर्क को प्रभावित करता है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों के अस्पतालों से लेकर वंचित समुदायों के लिए स्कूल और सामाजिक कल्याण कार्यक्रम शामिल हैं, जो अक्सर सरकार द्वारा छोड़ी गई कमियों को पूरा करते हैं।

साइरो मालाबार चर्च के पूर्व प्रवक्ता, फादर पॉल थेलाकाट बताते हैं कि 'विदेशी फंडिंग जरूरी सेवाओं को सहारा देती है। जब लाइसेंस मिलने में देरी होती है या उन्हें रद्द कर दिया जाता है, तो इसका असर तुरंत होता है। इसका असर मरीजों, छात्रों और पूरे समुदायों पर पड़ता है।' विदेशी फंडिंग की भूमिका पर सवाल उठाकर और ईसाइयों को संख्या के लिहाज से नगण्य बनाकर, जॉर्ज ने उन चिंताओं को और मजबूत किया जो पहले से ही मौजूद थीं।

केरला कैथोलिक बिशप्स कॉन्फ्रेंस के उप महासचिव फादर थॉमस थरायिल ने कहा कि 'ठीक ऐसे समय में जब हमारे संस्थानों की फंडिंग की जांच-पड़ताल हो रही है, जब कोई कहता है कि हम सिर्फ दो प्रतिशत हैं और हमें मोलभाव नहीं करना चाहिए, तो लोग इन दोनों बातों को आपस में जोड़ लेते हैं। इससे अविश्वास पैदा होता है।'

ऐसा लगा कि इस अविश्वास ने मध्य केरला के राजनीतिक माहौल को बदल दिया। जिन निर्वाचन क्षेत्रों में भाजपा को बढ़त मिलने की उम्मीद थी, वहां बाद में सतर्कता बरती जाने लगी। इडुक्की में सीरो-मालाबार चर्च के बिशप जॉन नेल्लिकुनेल ने इस बदलाव को इन शब्दों में बयां कियाः 'पहले लोगों में कौतूहल था। बाद में लोग कहने लगे कि इन नीतियों का हमारे संस्थानों के लिए क्या मतलब है।'

भाजपा नेता पी.सी. जॉर्ज जिनके बयान पर उठ रहे सवाल

खुद भाजपा के भीतर भी इस बात को माना जाने लगा कि उन्होंने सही समय और गति - दोनों ही गंवा दिए हैं। मध्य केरला के पार्टी के एक पदाधिकारी ने कहा कि 'हमें यकीन था कि इस बार हम कुछ बढ़त बना पाएंगे। लेकिन एफसीआरए जैसे मुद्दों और जॉर्ज जैसे लोगों के बयानों ने हमारे लिए मुश्किलें खड़ी कर दीं।'

चर्च की प्रतिक्रिया तेज और तीखी थी। मलंकरा ऑर्थोडॉक्स सीरियन चर्च के एक बिशप ने सार्वजनिक रूप से जॉर्ज को फटकारा और उस समुदाय को कमजोर करने की कोशिशों के खिलाफ चेतावनी दी, जिसने केरला के सामाजिक विकास में बुनियादी भूमिका निभाई है। जॉर्ज के इस तरह के बयान से भाजपा के उनलोगों के साथ रिश्ते तनावपूर्ण हो गए, जिनका प्रतिनिधित्व करने और जिनकी रक्षा करने का दावा वह कभी किया करते थे।

केरला की जनसांख्यिकीय संरचना बताती है कि यह क्यों मायने रखता है। यहां की आबादी में हिन्दुओं की हिस्सेदारी लगभग 54 से 55 प्रतिशत है, मुसलमानों की लगभग 26 से 27 प्रतिशत और ईसाइयों की लगभग 18 से 19 प्रतिशत। कई अन्य राज्यों के विपरीत, यहां कोई भी एक समुदाय अकेले दम पर चुनावी नतीजों को निर्णायक रूप से तय नहीं कर सकता। इस ढांचे में ईसाई अहम स्थान रखते हैं। मध्य केरला के जिलों - जैसे कि कोट्टायम, एर्नाकुलम, इडुक्की और पतनमतिट्टा - में उनकी सघन आबादी है और यह उन्हें चुनावी दृष्टि से कहीं अधिक दमदार बनाती है।

यह जनसांख्यिकीय सच्चाई भाजपा के लिए लंबे समय से ढांचागत बाधा रही है। वैसे, केरल में पार्टी का वोट शेयर लगातार बढ़ा है। 2000 के दशक की शुरुआत में यह लगभग 6 प्रतिशत था जो हाल के विधानसभा चुनावों में बढ़कर करीब 10 से 12 प्रतिशत हो गया। 2019 के लोकसभा चुनाव में यह 15 प्रतिशत हो गया था। फिर भी, यह बढ़त सीटों की संख्या में उसी अनुपात में नहीं बदल पाई है। पार्टी ने विधानसभा में अपना खाता 2016 में ही खोला था लेकिन पांच साल के भीतर ही उसने पकड़ खो दी। तब से वह कुछ सीमित इलाकों से बाहर अपना विस्तार करने के लिए संघर्ष कर रही है।

इसकी वजह वोटों का गणित है। अधिकतर निर्वाचन क्षेत्रों में, ऊंची जाति के हिन्दुओं के वोटों का लगभग पूरी तरह से एकजुट होना भी भाजपा को जीत के लिए जरूरी आंकड़े के करीब नहीं पहुंचा पाता। मुसलमानों या ईसाइयों में से किसी एक का भी समर्थन उसे नहीं मिलता और इसलिए सत्ता तक पहुंचने का उसका रास्ता बंद ही रहता है। अन्य इलाकों की तरह केरला में भी भाजपा और मुस्लिम मतदाताओं के बीच राजनीतिक दूरी है। इसे देखते हुए भाजपा को हराने में ईसाई समुदाय की भूमिका महत्वपूर्ण रहती है।

इसके ही मद्देनजर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने केरला के अपने दौरों के दौरान बिशपों से बातचीत की। जब आर्कबिशप जोसेफ पम्प्लानी ने कहा कि भाजपा का समर्थन करना एक विकल्प हो सकता है - बशर्ते कि अधिकतर ईसाई किसानों की आर्थिक मांगें, जैसे कि रबर के बेहतर दाम, पूरी की जाएं - तो इससे चर्च के कुछ वर्गों में बातचीत करने की इच्छा का संकेत मिला।

त्रिशूर में सुरेश गोपी ने यह दिखाया कि यह तरीका चुनावी तौर पर कितना असरदार हो सकता है। उन्होंने भड़काऊ बयानबाजी से बचते हुए और लोगों से सीधे संपर्क बनाने पर जोर देते हुए, ईसाई मतदाताओं के एक तबके के विरोध को कम किया और वह केरला से भाजपा के पहले लोकसभा सदस्य बन गए।

इस बार विधानसभा चुनाव में भाजपा ने कई ईसाई उम्मीदवारों को मैदान में उतारा। इनमें पी.सी. जॉर्ज, उनके बेटे शोन जॉर्ज, केन्द्रीय मंत्री जॉर्ज कुरियन और राष्ट्रीय नेता अनूप एंटनी शामिल थे। लेकिन जब वोटिंग खत्म हुई, तो इस बात के बहुत कम सबूत मिले कि यह रणनीति पार्टी के लिए फायदेमंद साबित हुई है। यह मुमकिन है कि भाजपा आने वाले समय में ईसाइयों को अपने साथ जोड़ सके, लेकिन प्रचार की ग़लतियां शायद इस बार उस पर भारी पड़ें। ■

कोरी बकवास और 'खाते' की हेरा-फेरी

गुरदीप सिंह सप्पल

पश्चिम एशिया में चल रहे युद्ध के कारण ईंधन की कीमतें भले ही तेजी से आसमान छू रही हों, भारत के पेट्रोल पंपों पर यह उम्मीद के विपरीत स्थिर बनी हुई हैं। नरेन्द्र मोदी सरकार ने नागरिकों के हित में अपने 'जन-केन्द्रित' उपायों का खूब ढिंढोरा पीटा है, लेकिन यह सारे उपाय असल में, एक दशक से चली आ रही लगातार दोहन और मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति में महज एक 'कामर्शियल ब्रेक' से ज्यादा कुछ नहीं हैं।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के सत्ता में रहे एक दशक का ज्यादातर हिस्सा, सरकारी खजाने के लिए एक बड़ी सौगात साबित हुआ है। उनके कार्यकाल के दौरान, कच्चे तेल की वैश्विक कीमतें कई बार जमीन पर आ गिरीं- एक समय तो वे 30 डॉलर प्रति बैरल तक पहुंच गई थीं। कच्चे तेल की कीमतें जब-जब गिरीं, भारतीय उपभोक्ता इस इंतजार में रहा कि पेट्रोल और डीजल की खुदरा कीमतें भी उसी अनुपात में नीचे आएंगी। लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ। सरकार ने बड़ी खामोशी से उस अंतर यानी मुनाफे को अपनी जेब में डाल लिया, यह बताने की जहमत शायद ही कभी उठाई कि आखिर इसका फायदा आम जनता तक क्यों नहीं पहुंचाया गया।

जब कभी उसने समझाना या सफाई देनी चाही, तो वही तीन घिसे-पिटे तर्क दोहरा दिए: कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार द्वारा जारी किए गए 'ऑयल बॉन्ड', या पेट्रोलियम राजस्व से बनाई गई सड़कें, या फिर गरीबों को नकद हस्तांतरण। हालांकि, हकीकत इससे बिल्कुल अलग है, और सरकार के अपने ही आंकड़ों से बखूबी जाहिर भी हो जाती है।

दावा #1 'यूपीए कार्यकाल के ऑयल बॉन्ड चुका रहे थे'

मनमोहन सिंह सरकार ने 1.6 लाख करोड़ रुपये के ऑयल बॉन्ड छोड़े थे; ये ऐसे इंस्ट्रूमेंट थे जो तेल मार्केटिंग कंपनियों को रियायती दरों पर ईंधन बेचने के बदले मुआवजा देने के लिए जारी किए गए थे। भाजपा ने यह बात बार-बार दोहराई है, और इन ऑयल बॉन्ड को अपनी शिकायत और अपनी सफाई, दोनों के तौर पर पेश किया है।

लेकिन जिस बात को वह बड़ी आसानी से नजरअंदाज कर जाती है, वह यह है कि पिछले एक दशक में, मोदी सरकार ने पेट्रोलियम टैक्स के रूप में 44 लाख करोड़ रुपये से ज्यादा की कमाई की है। जबकि ऑयल बॉन्ड का भुगतान, मूलधन और ब्याज मिलाकर, लगभग 3.3 लाख करोड़ रुपये बैठता है। यह जमा किए गए टैक्स का लगभग सात प्रतिशत है। दूसरे शब्दों में, बॉन्ड चुकाने में खर्च हुए हर एक रुपये के बदले, मोदी सरकार ने तेरह रुपये अपनी जेब में डाले।

दावा #2 'पैसे का इस्तेमाल सड़कें बनाने में हुआ'

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि मोदी के कार्यकाल में भारत में हाईवे की लंबाई बढ़ी है। सरकार इसे इस बात के सबूत के तौर पर पेश करती है कि पेट्रोलियम से होने वाली कमाई का इस्तेमाल सही तरीके से किया गया। पहली नजर में, यह तर्क ज्यादा सही लगता है, लेकिन इसमें हिसाब-किताब की एक कुटिलता छिपी है।

मार्च 2024 तक, भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (एनएचएआई) पर 3.35 लाख करोड़ रुपये का कर्ज बकाया था। यह आंकड़ा उन 'ऑयल बॉन्ड' की देनदारी से दोगुने से भी ज्यादा है, जिसका रोना भाजपा रोती रहती है। अगर, जैसा कि भाजपा का तर्क है, भविष्य के लिए टाला गया कर्ज आने वाली पीढ़ियों पर इतना भारी बोझ है, तो क्या एनएचएआई की बैलेंस शीट को लेकर भी वैसा ही गुस्सा नहीं होना चाहिए?

बात इतनी ही नहीं है। उधार के पैसे से बनाए गए हाईवे अब इंफ्रास्ट्रक्चर इन्वेस्टमेंट ट्रस्ट (इन्वीट) मैकेनिज्म के जरिये असल में निजी निवेशकों और सॉवरेन वेल्थ फंड्स को वापस बेचे जा रहे हैं। भविष्य में टोल से होने वाली कमाई को, निजी खिलाड़ियों के लिए रिटर्न कमाने के साथ-साथ, कर्ज चुकाने के लिए भी इस्तेमाल किया जाएगा। सड़क मंत्री नितिन गडकरी ने सार्वजनिक तौर पर कहा है कि एनएचएआई की सालाना टोल से होने वाली कमाई 50,000 करोड़ रुपये से बढ़कर 1.45 लाख करोड़ रुपये होने की उम्मीद है। वित्त वर्ष 2025-26 में, टोल से होने वाली कमाई पहले ही 73,000 करोड़ रुपये तक पहुंच चुकी है।

तो, सड़कें उधार के पैसे से बनाई जाती हैं, कर्ज चुकाने और निवेशकों को मुनाफा देने के लिए भविष्य के टोल को गिरवी रख दिया जाता है, और आम नागरिक या उपभोक्ता से यह स्वीकार करने को कहा जाता है कि ईंधन पर ऊंचे टैक्स से ही इस सड़क प्रोजेक्ट का खर्च चला है। यह वही उपभोक्ता है जो टोल भी देता है, जिससे कथित तौर पर कर्ज भी चुकता होता है और निजी निवेशक को मुनाफा भी मिलता है।

दावा #3 'पैसा गरीबों तक पहुंचा'

यह तीसरा तर्क सबसे ज्यादा पेचीदा, बल्कि सबसे ज्यादा बेईमान है। भाजपा मोदी सरकार के कार्यकाल में 50 लाख करोड़ रुपये से ज्यादा के 'डायरेक्ट बेनिफिट

गुवाहाटी में अपने वाहनों में ईंधन भरवाने के लिए जुटे लोग

महज एक दशक में ही, मोदी सरकार ने भारत के राष्ट्रीय कर्ज में 150 लाख करोड़ रुपये जोड़ दिए, जो बीते लगभग सात दशकों में सभी पिछली सरकारों द्वारा मिलकर जमा किए गए कुल कर्ज से भी लगभग 2.75 गुना ज्यादा है

ट्रांसफर' (डीबीटी) का हवाला देते हुए यह दावा करती है कि पेट्रोलियम से हुई कमाई को गरीबों तक पहुंचाया गया। यह आंकड़ा तब तक बहुत बड़ा और चौंकाने वाला लगता है, जब तक कि आप इसे अलग-अलग हिस्सों में बांटकर इसकी बारीकी से जांच नहीं कर लेते।

भारत का कुल सब्सिडी बिल, जिसे केन्द्रीय बजट के हिस्से के तौर पर मापा जाता है, असल में 2013-14 के 16.3 प्रतिशत से घटकर 2025-26 में 13.06 प्रतिशत हो गया है। मौजूदा सब्सिडी का लगभग 91 प्रतिशत हिस्सा अनाज वितरण, उर्वरक, प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत आवास और एलपीजी पर खर्च होता है; ये सभी चीजें यूपीए के शासनकाल में भी मौजूद थीं- लेकिन तब इनका स्तर काफी ऊंचा था। तो, इस सरकार ने योजनाओं का कोई विस्तार नहीं किया है; इसने बस उन्हें एक नया नाम जरूर दे दिया है।

सबसे ज्यादा चौंकाने वाला आंकड़ा पेट्रोलियम सब्सिडी में आई भारी गिरावट है, जो यूपीए के समय केन्द्रीय बजट का 5.1 प्रतिशत थी, और जो आज घटकर महज 0.24 प्रतिशत रह गई है। 2013-14 में, भोजन और उर्वरक सब्सिडी मिलाकर बजट का 9.6 प्रतिशत थीं; अब वे 7.33 प्रतिशत पर हैं। और न ही यूपीए के वर्षों की तुलना में आवास आवंटन में कोई खास बढ़ोतरी हुई है।

यहां गौर करने की बात यह भी है कि डीबीटी के दावों में जिन 'दक्षता लाभों' का जिक्र हुआ है, वे आंकड़े सरकार द्वारा जारी किए गए हैं; भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (सीएजी) द्वारा इनका स्वतंत्र रूप से ऑडिट नहीं किया गया है। दरअसल हुआ यह कि सरकार ने वितरण प्रणाली (पाइपलाइन) में बदलाव किया, उसके जरिये प्रवाहित होने वाली मात्रा सीमित कर दी।

कर्ज जो छिपाए न छिपे

जब मई 2014 में नरेन्द्र मोदी ने सत्ता संभाली, तब भारत का कुल राष्ट्रीय कर्ज, जो पिछले 67 सालों में जवाहरलाल नेहरू से लेकर अब तक के सभी प्रधानमंत्रियों के कार्यकाल में जमा हुआ था, लगभग 55 लाख करोड़ रुपये था। मार्च 2026 तक, यह बढ़कर 197 लाख करोड़ रुपये हो गया! 2026-27 के बजट के अनुमान के अनुसार, मार्च 2027 तक यह 218.63 लाख करोड़ रुपये तक पहुंच जाएगा।

महज एक दशक में ही, मोदी सरकार ने भारत के राष्ट्रीय कर्ज में लगभग 150 लाख करोड़ रुपये जोड़ दिए हैं, जो कि बीते लगभग सात दशकों में सभी पिछली सरकारों द्वारा मिलकर जमा किए गए कुल कर्ज से भी लगभग 2.5 गुना ज्यादा है। अब भारत हर साल लगभग 11 लाख करोड़ रुपये सिर्फ ब्याज के तौर पर चुकाता है, और अब हर भारतीय नागरिक पर औसतन 1.5 लाख रुपये से ज्यादा का कर्ज है।

इसमें एनएचएआई, इंडियन रेलवे फाइनेंस कॉरपोरेशन, पावर फाइनेंस कॉरपोरेशन और फूड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया की ऑफ-बजट देनदारियां शामिल नहीं हैं, जिनका अनुमान 20-25 लाख करोड़ रुपये है। ये देनदारियां विवरणों में दिखाई नहीं देतीं।

अब अगर 1.6 लाख करोड़ रुपये की स्थगित सब्सिडी, जैसा कि भाजपा तर्क देती है, भारत के भविष्य पर एक अवांछित-अनुचित बोझ थी, तो फिर इस 150 लाख करोड़ रुपये के नए कर्ज को हम क्या कहेंगे? यह कर्ज गरीबों को सब्सिडी देने के लिए नहीं, बल्कि शासन के एक ऐसे मॉडल को वित्तपोषित करने के लिए जमा किया गया है, जो नागरिकों से संसाधन निचोड़ता है, सार्वजनिक संपत्तियों को गिरवी रखता है और फिर इसे 'विकास' का नाम दे देता है। ■

गुरदीप सिंह सप्पल कांग्रेस कार्यसमिति के स्थायी आमंत्रित सदस्य हैं

बंगाल की चाबी अब भी महिलाओं के हाथ

इसके बावजूद कि संदिग्ध एसआईआर प्रक्रिया ने महिला मतदाताओं का अनुपात खासा कम कर दिया है। ऐसा पिछले एक दशक में पहली बार हुआ है

गौतम भट्टाचार्य/कुणाल चटर्जी

चुनावी रैलियों में ममता बनर्जी बार-बार पूछती हैं: 'आपमें से कितने लोगों के नाम वोटर लिस्ट से हटाए गए हैं? जरा अपने हाथ ऊपर उठाएं।' अक्सर, वह लिस्ट से बाहर रह गई कुछ महिलाओं को बुलाती हैं, और चुनाव आयोग तथा 'स्पेशल इंटेंसिव रिवीजन' (एसआईआर) पर जान-बूझकर उन्हें वोट देने के अधिकार से वंचित करने का आरोप लगाती हैं। वादा करती हैं, 'जो लिस्ट से बाहर रह गए हैं, उन्हें डरने की जरूरत नहीं।' पार्टी कार्यकर्ताओं से कहती हैं कि प्रभावित वोटरों की मदद करें ताकि वे दोबारा लिस्ट में शामिल होने के लिए अपील कर सकें।

ममता शायद अपनी सबसे कठिन चुनावी लड़ाई लड़ रही हैं। तीन कार्यकाल पूरे करने के बाद उन्हें सत्ता-विरोधी लहर, कई सहयोगियों पर लगे भ्रष्टाचार के आरोपों और रोजगार के अवसरों एवं औद्योगिक विकास में सुस्ती को लेकर निराशा का सामना करना पड़ रहा है। वह 70 साल से ज्यादा की हो चुकी हैं। उन्हें भाजपा जैसे एक जबरदस्त प्रतिद्वंद्वी का सामना करना पड़ रहा है, जो उन्हें सत्ता से हटाने के लिए किसी भी हद तक जा सकती है। 2016 और 2021 के चुनावों में महिलाओं ने भारी संख्या में उनके पक्ष में मतदान किया था। अगर यह रुझान जारी रहता है, तो उनके सत्ता में बने रहने की संभावना है। सवाल यह है कि क्या वे ऐसा करेंगी?

एसआईआर ने राज्य में महिला मतदाताओं के अनुपात में काफी कमी ला दी है- पिछले एक दशक में ऐसा पहली बार हुआ है। राज्यसभा में दिए गए एक जवाब में सामने आए चुनाव आयोग के आंकड़ों से पता चलता है कि बंगाल में महिला मतदाताओं की संख्या 10 साल के सबसे निचले स्तर पर है; एसआईआर के बाद लिंग अनुपात 2024 की लोकसभा मतदाता सूची में प्रति 1,000 पुरुषों पर लगभग 966 महिलाओं से गिरकर 956 रह गया है।

वोटर लिस्ट से इन नामों को हटाने का चुनावी नतीजों पर क्या असर पड़ेगा? तृणमूल कांग्रेस की नेता और राज्यमंत्री चंद्रिमा भट्टाचार्य बेबाक तरीके से कहती हैं, 'चुनाव आयोग ने जान-बूझकर महिला मतदाताओं को निशाना बनाया है। हमारे बूथ-स्तर के एजेंटों को सुनवाई सत्रों में मतदाताओं की मदद नहीं करने दी गई।' वह कहती हैं कि 'तार्किक विसंगति' की इस नई श्रेणी का जिक्र तब नहीं किया गया, जब एसआईआर प्रक्रिया शुरू हुई। उनका आरोप है कि इसे बाद में सिर्फ असली मतदाताओं के नाम हटाने के इरादे से शामिल किया गया था, और उन्हें पूरा भरोसा है कि यह चाल कामयाब नहीं होगी।

राजनीतिक विश्लेषक और शिक्षाविद प्रोफेसर विश्वनाथ चक्रवर्ती मानते हैं कि एसआईआर चुनावी गणित में अनिश्चितता की एक नई परत जोड़ देता है। कहते हैं, 'मुस्लिम मतदाताओं के नाम काटे जाने के मुकाबले लिंग अनुपात में गिरावट तृणमूल कांग्रेस के लिए ज्यादा बड़ी सिरदर्दी है,' और बताते हैं कि इसका असर उन सीटों पर पड़ सकता है जहां मुकाबला नजदीकी है। फिर भी, उन्हें उम्मीद है कि ज्यादा मतदान और महिलाओं का एकजुट होना ममता को खोई जमीन वापस पाने में मददगार होगा।

*

ममता के जन-कल्याण-आधारित रुख की वामपंथी और दक्षिणपंथी, दोनों ने उद्योग के मुकाबले आर्थिक मदद को प्राथमिकता देने के लिए आलोचना की है। लेकिन इसका असर यह है कि ममता के महिला मतदाताओं के साथ रिश्ते मजबूत हुए हैं। कुछ विश्लेषकों का कहना है कि मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और बिहार जैसे भाजपा-शासित राज्यों में 'लाड़ली बहना' और 'लाड़की बहिन' जैसी तदर्थ और ऐन मतदान से पहले किए जाने वाले नकद हस्तांतरण के विपरीत, ममता की योजनाएं व्यवस्थित रूप से नियोजित और बजट-बद्ध होती हैं।

एक और महत्वपूर्ण अंतर परामर्श प्रक्रिया है। तृणमूल कांग्रेस के पहले वित्तमंत्री और जाने-माने अर्थशास्त्री डॉ. अमित मित्रा को 2013 में 'कन्याश्री' योजना शुरू करने का श्रेय दिया जाता है। यह एक सशर्त नकद हस्तांतरण योजना है, जिसका उद्देश्य बाल विवाह को रोकना है। जो लड़कियां स्कूल जाती हैं और अविवाहित रहती हैं, उन्हें सालाना छात्रवृत्ति मिलती है; उच्च माध्यमिक शिक्षा पूरी करने पर राशि बढ़कर 25,000 हो जाती है। योजना की तारीफ संयुक्त राष्ट्र ने भी की है और राज्य सरकार के दावे के मुताबिक इससे एक करोड़ लड़कियों को लाभ मिला है।

इसके बाद 'रूपश्री' (2018) आई, जिसमें गरीब परिवारों की वयस्क महिलाओं की शादी के लिए 25,000 रुपये की मदद दी जाती है। 2021 में 'लक्ष्मीर भंडार' योजना आई जिसमें करीब 2.4 करोड़ महिलाएं शामिल हैं। यह 25 से 60 वर्ष की सभी पात्र महिलाओं के लिए एक यूनिवर्सल कैश ट्रांसफर योजना है। यह सामान्य वर्ग के लिए 500 रुपये से लेकर एससी/एसटी महिलाओं के लिए 1,700 रुपये तक है और महिलाओं के खातों में नियमित ट्रांसफर किया जाता है।

ये कैश ट्रांसफर, वृद्धावस्था और विधवा पेंशन के अलावा हैं; साथ ही यूनिवर्सल स्वास्थ्य बीमा योजना 'स्वास्थ्य साथी' (2016)- जो 'आयुष्मान भारत' से काफी पहले शुरू हुई और जिसमें परिवार का कार्ड महिलाओं के नियंत्रण में रहता है-स्कूल जाने वाले लड़के-लड़कियों को साइकिल देने वाली योजना 'सबुज साथी' (2025), और शौचालय और घर बनाने के लिए दिए जाने वाले अनुदान भी इसमें शामिल हैं।

विधानसभा चुनावों से महीनों पहले राज्य सरकार ने इन योजनाओं के तहत दी जाने वाली राशि बढ़ा दी है। इसके अलावा, 2025-26 के बजट में महिलाओं से जुड़ी विशेष योजनाओं के लिए 1.18 लाख करोड़ रुपये से ज्यादा और बच्चों से जुड़ी पहलों के लिए 59,000 करोड़ रुपये आवंटित किए गए हैं। महिला एवं बाल विकास विभाग का बजट बढ़ाकर 38,000 करोड़ रुपये कर दिया गया है। 'आशा' फ्रंटलाइन स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का मानदेय बढ़ाया गया है, और हाल ही में शुरू की गई 'युवा साथी' योजना के तहत 21 से 40 वर्ष के बेरोजगारों को पांच साल तक हर महीने 1,500 रुपये दिए जाएंगे।

'मुक्तिधारा' जैसे अन्य कार्यक्रम ग्रामीण और आदिवासी महिलाओं को छोटे उद्यमों के लिए मदद देकर सशक्त बनाते हैं, जबकि 'महिला समृद्धि योजना' अनुसूचित जाति और हाशिये की महिला उद्यमियों को ऋण और सब्सिडी देती है।

*

जमीनी स्तर पर फर्क साफ दिखता है। फूलों का कारोबार करने वाली दीपाली सांतरा के पति की महामारी के दौरान ड्राइवरी की नौकरी चली गई तो दीदी ने उन्हें मुश्किल से निकाला। अब उन्होंने अपने कारोबार को बढ़ाते हुए बोतलबंद पानी, सत्तू का शरबत और नाश्ता बेचना शुरू कर दिया है। उनके बेटे सुरजीत कहते हैं, 'हम दीदी के शुक्रगुजार हैं। ममता बनर्जी ने मेरी मां को मुश्किलों से लड़ने की हिम्मत दी।'

कोलकाता की एमहर्स्ट स्ट्रीट पर, पूजा घोष सड़क किनारे स्टॉल चलाती हैं, जहां वह सिंदूर, अगरबत्ती और मालाएं बेचती हैं- यह इस बात का जीता-जागता सबूत है कि महिलाओं को मिलने वाली आर्थिक मदद किस तरह उनकी आजीविका चलाने में सहायक होती है।

तृणमूल की राज्यसभा सांसद रचना बनर्जी, जी बांग्ला पर प्रसारित होने वाले लोकप्रिय टीवी शो 'दीदी नंबर 1' होस्ट करती हैं; इसमें हिम्मत और लगन से कामयाबी हासिल करने वाली महिलाओं की कहानियां दिखाई जाती हैं। वह कहती हैं, 'गांव की कई महिलाओं ने अपने भत्ते का इस्तेमाल पोल्ट्री फार्म शुरू करने, सिलाई मशीन खरीदने या छोटी-मोटी किराने की दुकानें खोलने के लिए किया है। ये भत्ते तुरंत मुश्किलें तो खत्म नहीं करते, लेकिन महिलाओं को योजना बनाने, बचत करने और सपने देखने का मौका जरूर देते हैं।'

स्वतंत्र टिप्पणीकार सुदीप्ता सेनगुप्ता कहती हैं, 'ममता जानती हैं कि कौन मुद्दे अहम हैं, और उन्होंने अपनी कोर टीम से राय लेकर इन योजनाओं को तैयार किया।' हालांकि, सभी लोग नहीं मानते कि ये नकद हस्तांतरण डॉ. मित्रा के सुझाए फॉर्मूले के अनुसार दिए जा रहे हैं। माकपा की पूर्व पार्षद नियति दासगुप्ता इन योजनाओं की वजह से कम उम्र में होने वाली शादियों को बढ़ावा मिलने पर चिंता जताती हैं। राजनीतिक विश्लेषक सुजीत चटर्जी का मानना है कि जहां भाजपा ज्यादा पैसे के वादे के साथ शहरी और युवा महिलाओं के एक तबके में पैठ बना सकती है, वहीं ग्रामीण इलाकों की ज्यादातर महिलाएं ममता के प्रति वफादार रहेंगी।

भाजपा के सामने विश्वसनीयता का भी संकट है और यह हाल ही में तब साफ दिखा जब एक युवा ने ई-रिक्शा से प्रचार कर रहे भाजपा कार्यकर्ताओं पर झूठे वादे फैलाने का आरोप लगाया और भाजपा की उस दिल्ली योजना को लागू करने में नाकामी का जिक्र किया, जिसमें महिलाओं को हर महीने 3,000 रुपये देने का वादा किया गया था। उसने कहा, 'आप लोगों को गुमराह क्यों कर रहे हैं?'

मतदाताओं के रुझान को हटाकर बात करें तो तमाम राजनीतिक पर्यवेक्षकों का मानना है कि इस चुनाव का नतीजा एसआईआर प्रक्रिया, विवादों के निपटारे के लिए तय की गई असंभव समय-सीमाओं और अंतिम मतदाता सूची में कितने लोगों को जगह मिलती है, जैसी बातों पर निर्भर करेगा। ■

विवादास्पद एसआईआर और काफी नाम कटने के बावजूद काबिलेगौर लगता है ममता बनर्जी के प्रति महिलाओं का रुझान

कई महिलाओं ने भत्ते का इस्तेमाल पोल्ट्री फार्म शुरू करने, सिलाई मशीन खरीदने या छोटी-मोटी किराने की दुकानें खोलने के लिए किया है। ये भत्ते तुरंत मुश्किलें तो खत्म नहीं करते, लेकिन योजना बनाने और बचत करने का मौका जरूर देते हैं

हवाई अड्डों की बस हवा-हवाई योजना

बिना तैयारी बस फीता काटने की आपाधापी का नतीजा है कि यात्री मिलते नहीं, इसलिए एक-एक कर विमान सेवाएं बंद होती जाती हैं

उत्तर प्रदेश का बहुप्रचारित कुशीनगर एयरपोर्ट जिसे दो साल में ही बंद कर दिया गया

पंकज चतुर्वेदी

कोई तीस हजार करोड़ से बने नोएडा इंटरनेशनल एयरपोर्ट का उद्घाटन कई करोड़ के खर्चे से हो गया। विज्ञापन, भीड़ जमा करने से लेकर हजारों लोगों को नाश्ता बांटने जैसे मद में सरकारी धन को खुले हाथों से खर्च किया गया। भाषणों और इश्तेहारों में उत्तर प्रदेश को पंख लगने के दावे किए गए। पर सच यह है कि इस हवाई अड्डे से जहाज उड़ाना फिलहाल दूर की बात है। वजह यह कि एयरपोर्ट बनाने वाली कंपनी के सीईओ स्विट्जरलैंड के हैं और नागरिक उड्डयन सुरक्षा ब्यूरो (ब्यूरो ऑफ सिविल एविएशन सेक्योरिटी- बकास) के 2011 के नियमों के मुताबिक, एयरपोर्ट सेक्योरिटी प्रोग्राम (एएसपी) की मंजूरी मिलने के लिए जरूरी है कि सीईओ भारतीय हो। हाल यह है कि फिलहाल तो किसी उड्डयन कंपनी का स्टाफ भी हवाई अड्डे में प्रवेश नहीं कर सकता।

नोएडा एयरपोर्ट का उद्घाटन 28 मार्च को हुआ। दावा किया जा रहा था कि एयरोड्रम मिलने की तिथि से 45 दिनों के अंदर विमान सेवा शुरू होगी। अब सरकार इस मामले में बीच का रास्ता निकालने में जुटी है, ताकि नोएडा एयरपोर्ट से फ्लाइट शुरू की जा सकें। वहीं, इस मंजूरी के बाद ही एयरपोर्ट पर काम करने वाले कर्मचारियों के लिए एयरपोर्ट एंट्री पास (एईपी) बन सकेंगे।

जब तक यह अनुमति नहीं मिलती, तब तक टिकट बुकिंग नहीं की जा सकती। फिर मंजूरी मिलने के बाद 40 से 60 दिन का समय उड़ान शुरू होने में लगेगा। साफ है कि जून-जुलाई से पहले तो यहां से उड़ान शुरू होने से रही। ऐसे में, यह सवाल वाजिब है कि बगैर अनिवार्य अनुमतियों के किस तरह प्रधानमंत्री न केवल हवाई अड्डे का उदघाटन कर देते हैं, बल्कि बड़े-बड़े दावे भी कर देते हैं।

हवाई अड्डों की संख्या के दावे के बरक्स उनसे मिलने वाली सुविधाओं की दूसरी बानगी दिल्ली की पूर्वी सीमा से सटा हिंडन हवाई अड्डा है। इसका उद्घाटन मार्च 2019 में हुआ था लेकिन व्यावसायिक संचालन 11 अक्तूबर 2019 से हो पाया। फिर, कोविड की वजह से इस पर ब्रेक लग गया। पिछले साल अप्रैल-मई में 25 उड़ानें शुरू हो पाईं, पर अब इनमें से केवल 7 ही संचालित हो रही हैं। एयर इंडिया एक्सप्रेस ने हिंडन सिविल टर्मिनल से अपनी सभी उड़ानों को पूरी तरह बंद कर दिया है। रीजनल एयरलाइन स्टार एयर ने राजस्थान में अजमेर का किशनगढ़ रूट बंद कर दिया है। अभी यहां से केवल पंजाब में जालंधर के पास आदमपुर और महाराष्ट्र में नादेड़ के लिए उड़ानें संचालित हो रही हैं। वैसे, हिंडन हवाई अड्डे की अपनी हवाई पट्टी नहीं हैं और यह वायु सेना की उड़ान पट्टी का इस्तेमाल करता है। यह किस्सा अलग है कि यहां तक पहुंचना अपने में दूभर है- सड़कें टूटी हैं और रिक्शा से लेकर ट्रैक्टर तक यहां बेधड़क चलते है। ऐसे में, एक किलोमीटर के लिए आधा घंटा तक लगना आम बात है।

2021 के बाद देश में कई नए हवाई अड्डे बनाए गए और वे भी मुख्यतः उड़ान योजना के तहत। इस सरकार को संक्षेपीकरण (एब्रीविएशन) का खास शौक है इसलिए उड़ान का पूरा नाम जानना जरूरी है- उड़े देश का आम नागरिक। नाम तो अच्छा है लेकिन यह जानकर किसी को भी निराशा ही होगी कि इस योजना के तहत बने हवाई अड्डों में में से अधिकतर कम यात्री संख्या, वीजीएफ और अन्य कारणों से गैर-संचालित हैं। वीजीएफ एक सरकारी अनुदान है, जो विशेष रूप से उड़ान योजना के तहत एयरलाइंस को दिए जाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य छोटे शहरों को हवाई सेवा से जोड़ना और कम किराये पर उड़ानें उपलब्ध कराना है। चूंकि यात्रियों की संख्या काफी कम है, तो सरकार एयरलाइंस को यह अनुदान देने में आनाकानी करने लगती है। ऐसे में, एयरलाइंस भी अपने पैर समेट लेती हैं।

इन हवाई अड्डों का वास्तविक हाल किसी को भी जानना चाहिए। उत्तर प्रदेश में 7 नए एयरपोर्ट शुरू हुए, जिनमें से 6 अब बंद हैं। 2021 में पूर्वी उत्तर प्रदेश में कुशीनगर एयरपोर्ट यह कहकर शुरू किया गया कि इससे बुद्ध सर्किट के यात्री आकर्षित होंगे। कुशीनगर में ही भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था। कुशीनगर से गोरखपुर 55 किलोमीटर दूर है और दोनों के बीच सड़क से एक घंटे में जाया-आया जा सकता है। दो साल बाद 2013 में ही यह एयरपोर्ट बंद कर दिया गया। इसी तरह, माना जाता है कि बुद्ध ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के ही श्रावस्ती में अपने कई सूत्र (उपदेश) दिए। यहां 2024 में एयरपोर्ट शुरू हुआ और उसी साल बंद भी हो गया। यही हाल अलीगढ, चित्रकूट, आजमगढ़ और मुरादाबाद एयरपोर्ट के हैं। ये सब 2014 में बने, इनके उद्घाटन हुए और तब से ही बंद हैं।

दिसंबर 2025 में राज्यसभा में सरकार ने स्वीकार किया था कि उत्तर प्रदेश में नया बना केवल अयोध्या हवाई अड्डा काम कर रहा है। उसने यह भी बताया था कि पिछले पांच वर्षों में उत्तर प्रदेश, झारखंड और बिहार में कुल 11 हवाई अड्डे उद्घाटित किए गए लेकिन इनमें से केवल चार पर ही वर्तमान में अनुसूचित उड़ानें संचालित हो रही हैं। ये हवाई अड्डे हैं: देवघर (झारखंड), पूर्णिया (बिहार) और उत्तर प्रदेश के कानपुर और अयोध्या। मोदी सरकार का दावा है कि 'उड़ान' योजना के तहत अब तक 95 हवाई अड्डों का पुनरुद्धार कर उन्हें परिचालन के लायक बनाया गया है। इनमें हेलीपोर्ट और वाटर एयरोड्रम भी शामिल हैं। लेकिन इनमें से लगभग 15 हवाई अड्डे इस समय पूरी तरह बंद हैं जबकि योजना के तहत शुरू किए गए 663 मार्गों में से करीब 327 मार्ग (लगभग 50 प्रतिशत) बंद हो चुके हैं। जो 15 हवाई अड्डे चालू नहीं हैं, उन पर सरकार ने लगभग 900 करोड़ रुपये खर्च किए। सरकार वीजीएफ के तहत अब तक 4,300 करोड़ रुपये से अधिक की सब्सिडी बांट चुकी है, जिनमें से एक बड़ा हिस्सा उन मार्गों पर गया जो अब बंद हो चुके हैं।

हवाई अड्डों के नाम पर बन रही योजनाओं से फायदा उन कुछेक लोगों को ही होता है जिनके तार सत्ता से जुड़े होते हैं। सरकारी धन से विकसित योजनाओं को अंततः चहेते पूंजीपतियों को सौंप दिया जाता है

सरकारी धन की इतनी बर्बादी और असफलता के बावजूद सरकार ने मार्च 2026 में 'संशोधित उड़ान' योजना शुरू की है। इसके लिए 28,840 करोड़ रुपये का भारी-भरकम बजट आवंटित किया गया है। इसमें सब्सिडी की अवधि 3 साल से बढ़ाकर 5 साल कर दी गई है। इसके तहत 100 नए हवाई अड्डे विकसित करने का लक्ष्य है।

कड़वी सच्चाई तो यह है कि हवाई अड्डों के नाम पर बन रही योजनाओं से आसपास की जमीनों के दाम बढ़ जाते हैं और रियल एस्टेट विकसित होने लगता है जिसका फायदा उन कुछेक लोगों को ही होता है जिनके तार सत्ता से जुड़े होते हैं। सरकारी धन से विकसित योजनाओं को अंततः चहेते पूंजीपतियों को सौंप दिया जाता है। ■

चंबल के डाकुओं का आधुनिक अवतार

सुप्रीम कोर्ट ने घड़ियाल अभयारण्य से 732 हेक्टेयर जमीन बाहर करने पर रोक तो लगा दी, लेकिन क्या इन 'डाकुओं' पर रोक लगेगी?

रश्मि सहगल

फोटो: गेटी इमेजेज

चंबल घाटी में किया जा रहा अवैध खनन अपने आप में गवाही देता है कि घड़ियाल किस प्रकार गंभीर संकट में हैं

नेशनल बोर्ड ऑफ वाइल्डलाइफ ने पिछले एक दशक में 1500 से ज्यादा ऐसे प्रोजेक्ट्स मंजूर किए, जिनमें से ज्यादातर वन्यजीव अभयारण्यों और नेशनल पार्कों के अंदर या एकदम करीब स्थित हैं। इसमें 2023-24 की अवधि के दौरान, पिछले साल की तुलना में 280 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। हैरानी नहीं कि दो लाख हेक्टेयर से ज्यादा वन क्षेत्र का इस्तेमाल गैर-वन उपयोग में हुआ है।

भारत की वन संपदा पर 'विकास' गतिविधियों के नाम पर धीरे-धीरे कब्जा करना इतना आम हो चुका है कि इससे किसी को हैरानी नहीं होती। मीडिया की सुर्खियां भी नहीं बनतीं। इसलिए, जब दिसंबर 2025 के आखिर में राजस्थान सरकार ने नेशनल चंबल घड़ियाल अभयारण्य (एनसीजीएस) के 732 हेक्टेयर इलाके को अभयारण्य के दर्जे से हटा दिया, तो कहीं से विरोध नहीं हुआ। लेकिन 2 अप्रैल 2026 को सुप्रीम कोर्ट ने दखल दिया और इस फैसले पर रोक लगा दी।

चंबल अभयारण्य भारत का एकमात्र त्रि-राज्यीय (राजस्थान, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश) नदी अभयारण्य है, जो चंबल नदी के लगभग 600 किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है और दुनिया भर की घड़ियाल आबादी के लगभग 75 प्रतिशत हिस्से को आश्रय प्रदान करता है।

घड़ियालों का इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर (आईयूसीएन) द्वारा 'गंभीर रूप से लुप्तप्राय' जीवों की सूची रखा जाना दर्शाता है कि दुनिया भर में इनकी मौजूदगी कितनी सीमित है और नदी में होने वाले किसी भी तरह के बदलाव के प्रति ये कितने संवेदनशील होते हैं। इन्हें प्रजनन और जीवित रहने के लिए अपने प्राकृतिक आवास यानी स्थिर रेत के टीलों, साफ पानी और निर्बाध नदी बहाव की जरूरत होती है। लेकिन दिसंबर में जारी डीनोटिफिकेशन ने इस नाज़ुक पारिस्थितिकी तंत्र को खतरे में डाल दिया। इसे केन्द्र सरकार का समर्थन प्राप्त था और एनबीडब्ल्यूएल ने इसे मंजूरी दी थी, जिसका नेतृत्व प्रधानमंत्री करते हैं।

हालांकि राजस्थान सरकार का तर्क है कि इस कदम से घड़ियालों के आवास को कोई नुकसान नहीं पहुंचेगा, लेकिन वन्यजीव संरक्षण विशेषज्ञों का कहना है कि यह इलाका बेरोकटोक रेत खनन और बढ़ती इंसानी दखलंदाजी के कारण पहले से ही खतरे में है। घड़ियालों के घोंसले बनाने के लिए ठोस रेत के टीलों का होना बेहद जरूरी है, और नदी के इस पर्यावरण में किसी भी तरह की छेड़छाड़ उनके अस्तित्व के लिए खतरा बन सकती है।

अभी हाल ही में कोटा में चंबल रिवरफ्रंट पर हुए एक कार्यक्रम में, लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला जब गर्व के साथ घोषणा करते दिखे कि चंबल रिवर क्रूज की लंबे समय से चली आ रही मांग आखिरकार पूरी होगी; वह भी इस दौरान पर्यावरणीय चिंताओं को 'विकास' और लोगों की मांगों के मुकाबले गौण मानकर खारिज ही कर रहे थे।

कोटा व्यापार महासंघ की अध्यक्ष क्रांति जैन डी-नोटिफिकेशन के फैसले का स्वागत इसलिए करती हैं, क्योंकि यह उन एक लाख लोगों के घरों को नियमित करने में मददगार होगा, जो अभयारण्य की सीमा के भीतर आने वाले इलाकों में अवैध रूप से बस चुके हैं। जबकि अब तक रिकॉर्ड 115 जनहित याचिकाएं दायर करने वाले 'पीपल फॉर एनिमल्स' के राज्य समन्वयक बाबूलाल जाजू मानते हैं कि कोटा-बूंदी क्षेत्र में यह डी-नोटिफिकेशन रेत माफिया के इशारे पर हुआ है। प्रभावित क्षेत्रों में पुलिस की नाक के नीचे ही रोजाना 1000 से ज्यादा ट्रक रेत खनन हो रहा है।

2 अप्रैल को डी-नोटिफिकेशन पर रोक लगाते हुए, जस्टिस विक्रम नाथ और संदीप मेहता ने रेत माफिया को चंबल के 'आधुनिक डाकू' कहते हुए खासे तल्ख शब्दों का इस्तेमाल किया था। राजस्थान सरकार पर अपनी तल्ख टिप्पणी में जस्टिस मेहता ने कहा, "तो, राज्य सरकार ने हार मान ली है। दुखद स्थिति है कि राज्य सरकार कह रही कि हम अपने प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा नहीं कर सकते। डाकू राज, जैसा हम पारंपरिक रूप से जानते थे, अब अतीत की बात है। अब ये आधुनिक डाकू हैं- माइनिंग माफिया।" कुछ वीडियो जो "सचमुच डरावने" थे: "कोई भी देख सकता है कि जब अर्थ-मूवर रेत खोद रहे होते हैं, तो जानवर आस-पास घूम रहे होते हैं।" उन्होंने कहा, "खनन माफिया द्वारा मारे गए सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट, पुलिस और वन अधिकारियों की संख्या देखिए... लेकिन राज्य यही भूल गया कि 'निवारक हिरासत' नाम का भी एक कानून है।"

*

चंबल में रेत खनन रोकने के लिए जमीनी काम कर रहे कोटा के पर्यावरणविद विजय वर्ने बताते हैं, '1970 के दशक तक, घड़ियाल धौलपुर से लेकर मुरैना तक मिलते थे, लेकिन मौजूदा राज्य सरकार की मंशा उन्हें बचाने की नहीं लगती। जब तक रेत खनन करने वालों पर सख्ती नहीं होगी, घड़ियालों और जल नदी आश्रित अन्य वन्यजीवों के बचने का कोई रास्ता नहीं है। हम गांव वाले आखिर कब तक लड़ेंगे? मुकदमेबाजी बहुत महंगी है और हम किसान तो वैसे भी गरीब लोग हैं।"

एनबीडब्ल्यूएल के पूर्व सदस्यों का मानना है कि "बोर्ड सरकार के लिए 'क्लीयरिंग हाउस' में तब्दील हो चुका है, जबकि इसका मकसद कुछ और था।" इससे बचे-खुचे जंगल और प्राकृतिक संसाधन खतरे में हैं

चंबल में जो त्रासदी सामने आ रही है, वह पूरे देश में चल रहे एक चलन का आइना है। वन्यजीव अभयारण्यों और दूसरे सुरक्षित इलाकों को बहुत तेजी से, कथित तौर पर जरूरी इंफ्रास्ट्रक्चर बनाने के लिए, सुरक्षित इलाकों की सूची से हटाया जा रहा है। खुद प्रधानमंत्री का लोकसभा क्षेत्र, वाराणसी, 'कछुआ वन्यजीव अभयारण्य' (टीडब्ल्यूएस), जो 1989 में बना, भारत का पहला ताजे पानी के कछुओं का अभयारण्य था, के विवादित विस्थापन का गवाह बना। यह विस्थापन गंगा एक्शन प्लान के तहत एक अंतर्देशीय जलमार्ग परियोजना की राह आसान बनाने के लिए किया गया था। यह विस्थापन परियोजना नाकाम होने की कगार पर है, क्योंकि भदोही-मिर्जापुर इलाके में भी रेत का अवैध खनन बेरोकटोक जारी है, जिसने वहां का नदी-तटीय इकोसिस्टम तबाह कर रखा है।

संरक्षित क्षेत्र अब कहीं भी पूरी तरह से 'संरक्षित' और 'सुरक्षित' नहीं रह गए हैं। बाघ अभयारण्यों और राष्ट्रीय उद्यानों के आस-पास के बफर जोन सिकुड़ते गए हैं, जिससे वन्यजीवों के लिए बहुत कम जगह बची है। पर्यावरणविद् रीनू पॉल कहती हैं, "आरक्षित वन अब ऐसे क्षेत्र नहीं रहे जहां आना-जाना मना हो।"

फरवरी 2021 में सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले ने राजाजी नेशनल पार्क से होकर सड़क गुजरने की अनुमति दे दी। इस प्रस्तावित हरिद्वार बाईपास सड़क के कारण शिवालिक हाथी गलियारे को बीच से काटने का खतरा उत्पन्न हो गया है, जिसके लिए 700 से अधिक पेड़ों को काटना पड़ेगा।

उधर, मुख्यमंत्री देवेंद्र फडणवीस की अध्यक्षता वाले महाराष्ट्र राज्य वन्यजीव बोर्ड ने भी, पर्यावरण को होने वाले अपूरणीय नुकसान और कम आर्थिक लाभों के बारे में स्पष्ट चेतावनियों के बावजूद, ताडोबा-अंधारी टाइगर रिजर्व कॉरिडोर में लौह अयस्क खनन को मंजूरी दे दी है। इस रिजर्व में 60 से ज्यादा बाघ रहते हैं।

सबसे ज्यादा आपत्तिजनक डी-नोटिफिकेशन (अधिसूचना रद्द करने) के कदमों में से एक, ग्रेटर निकोबार द्वीप में स्थित गलाथिया खाड़ी वन्यजीव अभयारण्य के 11.44 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को 72,000 करोड़ रुपये की ट्रांसशिपमेंट पोर्ट परियोजना के लिए हस्तांतरित किया जाना है। यह लुप्तप्राय विशाल लेदरबैक कछुओं की सबसे बड़ी रिहाइश बनाने का स्थान है।

भूतपूर्व आईएफएस अधिकारी प्रकृति श्रीवास्तव चेतावनी के स्वर में कहती हैं, 'सब कुछ बिकने को तैयार है। वे हर चीज से पैसा कमाना चाहते हैं। आप जितना ज्यादा जंगलों को दूसरी चीजों के लिए इस्तेमाल करेंगे, आपका वोट बैंक उतना ही बड़ा होगा। इन सभी बदलावों के पीछे ताकतवर लॉबी हैं और कोई भी उन्हें रोक नहीं पा रहा है'।

भू-उपयोग में बदलाव और डी-नोटिफिकेशन पूरे देश में हो रहे हैं। इनमें मिजोरम के डम्पा टाइगर रिजर्व, अरुणाचल के पक्के टाइगर रिजर्व के बफर जोन, महाराष्ट्र के मेलघाट टाइगर रिजर्व और उत्तराखंड के राजाजी टाइगर रिजर्व के इलाके शामिल हैं। मेलघाट और राजाजी में जो जमीन ली गई, वह "लीनियर" प्रोजेक्ट्स, यानी माइनिंग और इंफ्रास्ट्रक्चर के लिए के लिए थी। जमीन के इस्तेमाल में बदलाव के अन्य मामलों में गोवा के मोलेम नेशनल पार्क, गुजरात के गिरनार वाइल्डलाइफ सैंक्चुअरी और तेलंगाना के एतुरनागरम वाइल्डलाइफ सैंक्चुअरी के इलाके शामिल हैं।

ऐसे संरक्षित इलाकों का 'विकास' के लिए इस्तेमाल करना गैर-कानूनी है, क्योंकि वाइल्डलाइफ प्रोटेक्शन एक्ट 'संरक्षित इलाकों' को नुकसान पहुंचाने, उन्हें नष्ट करने या उनके इस्तेमाल में बदलाव करने पर रोक लगाता है- सिवाय तब, जब ऐसा वन्यजीवों की स्थिति सुधारने और उनके बेहतर प्रबंधन के लिए किया जा रहा हो। एनबीडब्ल्यूएल के पूर्व सदस्यों का मानना है कि "बोर्ड तो सरकार के लिए एक 'क्लीयरिंग हाउस' में तब्दील हो चुका है, जबकि इसका मकसद कुछ और था।" अब तो बहुत कम ही प्रस्ताव खारिज होते हैं। इससे देश के बचे-खुचे जंगल, प्राकृतिक संसाधन और लोगों की सेहत खतरे में है। ■

लेबनान में गाजा जैसा जातीय सफाया

इसराइल ने लेबनान से लोगों को विस्थापित करने का अभियान चला रखा है। हैरानी है कि इसकी ओर से दुनिया ने जैसे आंखें मूंद रखी हैं

अशोक स्वैन

जब दुनिया की नजरें डर और अविश्वास के साथ डॉनल्ड ट्रंप और ईरान के खतरनाक टकराव पर टिकी थीं, लेबनान में हो रही तबाही दुनिया के ध्यान से दूर रही। इसराइल अपने उत्तरी पड़ोसी के साथ सीमा को फिर से तय करने की धमकी दे रहा है, और पिछले एक महीने में उसने अपने सैन्य अभियान को एक पूर्ण युद्ध का रूप दे दिया है। इसमें अब जमीनी हमला, रिहाइशी इलाकों पर बमबारी और दक्षिणी लेबनान के बड़े हिस्सों पर कब्जे की साफ-साफ योजना शामिल है।

मार्च के मध्य से इसराइली सेना लेबनान के इलाके में और आगे बढ़ गई है। यह सब हफ्तों तक चली हवाई बमबारी के बाद हुआ, जिसमें न सिर्फ हिज्बुल्लाह के ठिकानों को निशाना बनाया गया, बल्कि घनी आबादी वाले इलाकों में घरों, अस्पतालों, विश्वविद्यालयों, पुलों और अन्य जरूरी बुनियादी ढांचों को भी।

लिटानी नदी के दक्षिण में मुस्लिम-बहुल पूरे के पूरे शहर खाली कराए जा रहे हैं। देश का बड़ा हिस्सा अब खाली करने के अभियान की जद में आ गया है और लगातार हो रही बमबारी के बीच बड़ी तादाद में लोग विस्थापित हो रहे हैं। यहां भयानक मानवीय संकट है। 15 लाख से ज्यादा लोग विस्थापित हो चुके हैं, और लाखों लोगों को उत्तर की ओर भागने पर मजबूर होना पड़ा है। आम नागरिकों की मौतें लगातार बढ़ रही हैं; मार्च के शुरू से अब तक पंद्रह सौ से ज्यादा लोग मारे जा चुके हैं, जिनमें 200 से ज्यादा महिलाएं और बच्चे, तथा कई मेडिकल कर्मचारी और पत्रकार शामिल हैं। दक्षिणी लेबनान और बेरूत के बाहरी इलाकों में हवाई हमलों से घर तबाह हो गए हैं और तमाम परिवार मलबे के नीचे दब गए हैं।

तबाही का यह सिलसिला जाना-पहचाना है। स्वास्थ्य केन्द्रों पर हमले हुए हैं, एम्बुलेंस सेंटरों को निशाना बनाया गया है और मेडिकल स्टाफ को मारा जा रहा है। मौके पर मौजूद डॉक्टर आगाह कर रहे हैं कि लेबनान की पहले से ही कमजोर स्वास्थ्य व्यवस्था को जिस तरह निशाना बनाया जा रहा है, वह ठीक वैसा ही है जैसा पहले गाजा में देखा गया। अस्पताल न सिर्फ सीधे निशाना बनाए जाने की वजह से बल्कि बिजली, ईंधन, मेडिकल सामान और स्टाफ की कमी की वजह से भी बंद हो रहे हैं। आर्थिक संकट से पहले से ही पस्त देश की जिंदगी बचाने की क्षमता चुकती जा रही है।

इसराइल अपने इरादों को छिपा भी नहीं रहा। उसका मकसद अब सिर्फ हिज्बुल्लाह को कमजोर करना या उसके हथियार छीनना नहीं रह गया है, बल्कि लिटानी नदी तक बफर जोन बनाना और विस्थापित लेबनानी नागरिकों को दक्षिण में उनके घरों में लौटने से रोकना है। इस रणनीति के तहत सीमा पर बसे पूरे-के-पूरे गांवों को तबाह करने की योजना है। असल में, लेबनान में एक और जातीय सफाये का अभियान चल रहा है। जो लोग इस क्षेत्र के इतिहास से वाकिफ हैं, उनके लिए ये गूंजें साफ-साफ सुनाई देती हैं। इसराइल ने 1982 से 2000 के बीच, लगभग दो दशकों तक दक्षिणी लेबनान में एक सुरक्षा जोन बना रखा था। जैसी उम्मीद थी, इस कब्जे ने नाराजगी को हवा दी, हिजबुल्लाह को मजबूत किया और हिंसा के चक्र को और भी गहरा किया। इसराइल की मौजूदा रणनीति शायद इसी पैटर्न को और भी बड़े, और भी ज्यादा विनाशकारी पैमाने पर दोहराने की है।

फोटो: गेटी इमेजेज

बेरूत के कोर्निश अल-मज़ारा इलाके में इसराइली हवाई हमले की जगह पर मलबे के बीच बचावकर्मी

मौजूदा समय को और भी खतरनाक बनाने वाली बात यह है कि आम लोगों को नुकसान पहुंचाने के चरम तरीकों को सामान्य मान लिया गया है। हवाई हमलों में बार-बार रिहायशी इलाकों को निशाना बनाया गया है, जिनमें वे इलाके भी शामिल हैं जिन्हें पहले अपेक्षाकृत सुरक्षित माना जाता था। विस्थापित नागरिकों को शरण देने वाले स्थलों को भी नहीं बख्शा गया है। ऐसे ही एक चर्चित हमले में बेरूत के समुद्रतटीय क्षेत्र को निशाना बनाया गया, जहां बमबारी से भागकर आए विस्थापित परिवारों ने टेंट लगा रखे थे।

बुनियादी ढांचे को तबाह करने में भी एक सुनियोजित प्रवृत्ति दिख रही है। प्रमुख सड़कों और पुलों पर हमले किए गए हैं, जिससे दक्षिणी लेबनान के बड़े क्षेत्र दुर्गम हो गए हैं। इससे न केवल हिज्बुल्लाह की सैन्य रसद बाधित होती है, बल्कि आम नागरिक भी फंस जाते हैं।

> लिटानी नदी के दक्षिण में मुस्लिम-बहुल पूरे के पूरे शहर खाली कराए जा रहे हैं। देश का बड़ा हिस्सा अब इस अभियान की जद में आ गया है। लगातार हो रही बमबारी के बीच बड़ी तादाद में लोग विस्थापित हो रहे हैं

यह संघर्ष जिस तरह फैलता जा रहा है, वह बेहद चिंताजनक है। लेबनान में संयुक्त राष्ट्र अंतरिम बल (यूनिफिल) के सदस्य, जिनमें तीन इंडोनेशियाई शांति सैनिक भी शामिल थे, इसराइली गोलाबारी में मारे गए हैं। गौर करने वाली बात है कि यूएन के कर्मचारी एक ऐसे संघर्ष क्षेत्र में मारे जा रहे हैं और घायल हो रहे हैं, जिसकी कथित तौर पर निगरानी की जा रही है और इससे पता चलता है कि नियम-कायदे किस तेजी से निरर्थक होते जा रहे हैं। इसराइली सैनिकों ने यूनिफिल के निगरानी कैमरे भी नष्ट कर दिए हैं और यहां तक कि शांति सैनिकों को हिरासत में भी ले लिया है।

इस बीच, क्षेत्रीय जोखिम लगातार बढ़ रहे हैं। हिज्बुल्लाह के ईरान से गहरे ताल्लुकात हैं और इस कारण लेबनान में चल रहे युद्ध को पश्चिम एशिया के टकराव से अलग करके नहीं देखा जा सकता। यहां का माहौल कभी भी अप्रत्याशित रूप से बिगड़ सकता है।

इस पैमाने पर हो रही तबाही, जातीय सफाये के पैटर्न वाले इसराइली अभियान और वहां की मनमानी सरकार द्वारा सीमाओं को फिर से खींचने की साफ कोशिशों के बावजूद अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया बहुत धीमी रही है। कुछ यूरोपीय सरकारों ने चिंता जताई और युद्धविराम की अपील की है, लेकिन उनकी आधी-अधूरी कोशिशों से घटनाओं का रुख नहीं बदलने जा रहा। लेबनान में चल रहा युद्ध एक बड़े भू-राजनीतिक नाटक में एक गौण घटना बनकर रह गया है और उसपर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है; लेकिन इस चुप्पी के गंभीर परिणाम होंगे।

जब बड़े पैमाने पर लोगों का जातीय विस्थापन होता है, नागरिक बुनियादी ढांचा तबाह किया जाता है और बेशर्मी से किसी इलाके पर कब्जा किया जाता है, और फिर भी अंतरराष्ट्रीय समुदाय की ओर से कड़ी प्रतिक्रिया नहीं आती, तो इससे गलत काम करने वालों को मनमानी करने की छूट मिल जाती है और वे और भी बड़े अपराध करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं। गाजा में जो कुछ हुआ, वह इसी बात का सबूत है। अंतरराष्ट्रीय नियमों का क्षरण-यहां तक कि युद्ध ऑपरेशन में भी-अचानक नहीं होता; यह धीरे-धीरे होता है, उन चीजों के सामान्यीकरण के जरिये जिन्हें कभी अस्वीकार्य माना जाता था। इसराइल एक अन्य संप्रभु देश को नया रूप देने और उस पर कब्जा करने के लिए जबरदस्त सैन्य ताकत का इस्तेमाल कर रहा है। वह लेबनान के नागरिकों पर भारी कीमत थोप रहा है, जिनका इस संघर्ष को संचालित करने वाली परिस्थितियों पर कोई नियंत्रण नहीं। लेबनान के लिए, इसके परिणाम उसके अस्तित्व के लिए ही खतरा बन गए हैं। यह देश पहले से ही आधुनिक इतिहास के सबसे बुरे आर्थिक संकटों में से एक की चपेट में था। सरकारी संस्थाएं कमजोर हैं, सार्वजनिक सेवाएं चरमरा रही हैं और राजनीतिक विभाजन बहुत गहरे हैं। यह युद्ध, पहले से ही नाजुक स्थिति वाले इस देश के विघटन की प्रक्रिया को और तेज कर रहा है।

इसके नतीजे पूरे इलाके के लिए भी उतने ही गहरे हैं। दक्षिणी लेबनान में इसराइल की लंबे समय तक मौजूदगी से प्रतिरोध गहराएगा, उग्रवादी नेटवर्क मजबूत होंगे और बार-बार झड़प होने की आशंका बढ़ेगी। एक तरह से, यह अस्थिरता को संस्थागत रूप दे देगा। अगर दक्षिणी लेबनान को सचमुच एक और गाजा में बदला जा रहा है, तो सवाल केवल यह नहीं है कि क्या हो रहा है, बल्कि यह भी है कि ऐसा होने क्यों दिया जा रहा है और वह भी अंतरराष्ट्रीय समुदाय की ओर से इतनी ठंडे प्रतिरोध के साथ। ■

अशोक स्वैन स्वीडन की उप्सला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फिलक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं

बदलाव की मांग के बाद बदलाव लाने का समय

नज़रें इसपर होंगी कि नेपाल की नई सरकार अपने वादे निभा पाती है या नहीं

उद्धव प्याकुरेल

नेपाल की नई सरकार ने सत्ता संभालने के पहले हफ्ते में ही कई हैरान करने वाले फैसले लिए हैं। 27 मार्च 2026 को नेपाल के अब तक के सबसे कम उम्र के प्रधानमंत्री बालेन्द्र शाह (36 वर्ष) के शपथ ग्रहण के अगले ही दिन, सरकार ने पूर्व प्रधानमंत्री के.पी. शर्मा ओली और पूर्व गृह मंत्री रमेश लेखक को गिरफ्तार करने का आदेश दे दिया। उन पर सितंबर 2025 में हुए युवा आंदोलन को दबाने के दौरान आपराधिक लापरवाही बरतने और इस क्रम में लोगों की मौत में भागीदार बनने (लापरवाही से हत्या) के आरोप हैं।

गिरफ्तारी की घोषणा करते हुए गृह मंत्री सुदान गुरुंग ने सोशल मीडिया पर लिखाः 'आपने गलत पीढ़ी से पंगा ले लिया है।' 29 मार्च को, अधिकारियों ने मनी लॉन्ड्रिंग के आरोप में एक और पूर्व मंत्री को गिरफ्तार किया और ओली सहित तीन पूर्व प्रधानमंत्रियों के खिलाफ भ्रष्टाचार की जांच शुरू कर दी।

सत्ता में आने के दूसरे ही दिन, सरकार ने 100-सूत्रीय सुधार एजेंडा जारी किया। सरकार ने सरकारी और निजी अस्पतालों को तुरंत प्रभाव से आर्थिक रूप से कमजोर मरीजों के लिए 10 फीसद बेड आरक्षित करने का निर्देश दिया, और विरोध प्रदर्शनों के दौरान मारे गए लोगों- जिनकी संख्या 70 के आसपास थी- के परिवारों को राष्ट्रीय विद्युत प्राधिकरण में नौकरी देने की पेशकश की।

सरकार ने राजनीतिक दलों से जुड़े सभी छात्र संघों को खत्म करने का भी आदेश दिया (जेन जेड सरकार के लिए यह एक अजीब फैसला है) और नौकरशाहों, शिक्षकों और राज्य से जुड़े अन्य कर्मचारियों पर राजनीतिक दलों के साथ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ने पर रोक लगा दी। विभिन्न बोर्डों में राजनीतिक रूप से नियुक्त लोगों से स्वेच्छा से अपने पदों से हटने को कहा गया है; यदि वे ऐसा नहीं करते हैं, तो सरकार उन सभी 1,200 लोगों को बर्खास्त करने पर आमादा दिख रही है। एक बिल पेश किया गया है, जिसमें निजी स्कूलों को 'गैर-लाभकारी' संस्थान मानने का प्रस्ताव है।

2022 में बनी राष्ट्रीय स्वतंत्र पार्टी (आरएसपी) की जबरदस्त जीत के बाद छाए उत्साह में निजी स्कूलों, नौकरशाही और जनता के कुछ वर्गों की आलोचना फीकी पड़ गई है। सरकार के खिलाफ विरोध प्रदर्शनों की अगुवाई करने वाले आदर्शवादी युवा महज छह महीनों में उसे सत्ता से हटाने में कामयाब रहे। फिलहाल नेपाल उस जीत की चमक में डूबा हुआ है, जो अगस्त 2025 में नामुमकिन लग रही थी।

हालांकि, नई सरकार के सामने कई बड़ी चुनौतियां हैं। चुनाव से पहले किए गए वादों- जैसे जीडीपी वृद्धि दर को सात फीसद तक पहुंचाने, लोगों के पलायन को रोकने के लिए 12 लाख नौकरियां पैदा करने, और पांच साल में नेपाल को 100 अरब डॉलर की अर्थव्यवस्था और एक आईटी हब बनाने- को पूरा करने के लिए थोड़ी किस्मत और बहुत ज्यादा मेहनत की जरूरत होगी। चारों ओर से जमीन से घिरे ऐसे देश में, जिसकी अर्थव्यवस्था अब तक काफी हद तक बंद रही, उसे खोलने के लिए अभिनव तरीकों वाली नीतियों की जरूरत होगी; क्योंकि सरकार को लोगों की बढ़ती उम्मीदों, तेज बदलाव की चाहत और नए आर्थिक मौकों को एक साथ संभालना होगा।

प्रधानमंत्री बालेन्द्र शाह इस पद पर पहुंचने वाले पहले मधेसी (मैदानी इलाके के व्यक्ति) भी हैं। उन्हें संतुलन साधना होगा। एक तरफ प्रभावशाली 'खस-आर्य' जातीय समूहों और दूसरी तरफ मधेसियों, दलितों और समाज के अन्य पिछड़े वर्गों से आने वाले अलग-अलग तरह के दबावों और मांगों के बीच तालमेल बैठाना होगा।

नेपाल की सरकार और राजनीति पर लंबे समय से ऊंची जाति के 'खस-आर्य' पहाड़ी लोगों का दबदबा रहा है, जो न्यायपालिका और नौकरशाही को भी नियंत्रित करते हैं। आबादी में करीब 20 फीसद हिस्सेदारी रखने वाले मधेसी सांस्कृतिक रूप से भारतीयों के ज्यादा करीब माने जाते हैं; इसी वजह से नेपाल के शासकों की नजर में उनकी राष्ट्रभक्ति शक के घेरे में रही। इस स्थिति का मुकाबला करने के लिए, मधेसियों ने राजनीति में ज्यादा प्रतिनिधित्व और संघवाद के जरिये सत्ता के विकेंद्रीकरण की मांग की। कागज पर तो ये दोनों मांगें मान ली गईं, लेकिन इन्हें लागू नहीं किया गया। 2015 के संविधान में प्रांतों के मनमाने बंटवारे और नागरिकता के असमान अधिकारों का मधेसियों ने जोरदार विरोध किया, जबकि काठमांडू के सत्ताधारी वर्ग ने माना कि ये विरोध-प्रदर्शन भारत के इशारे पर हो रहे हैं।

फोटो: गेटी इमेजेज

नेपाल के प्रधानमंत्री पद की शपथ लेते काठमांडू के पूर्व मेयर बालेन्द्र शाह जिनके समक्ष कम नहीं हैं चुनौतियां

> प्रधानमंत्री बालेन्द्र शाह के सामने संतुलन साधने की चुनौती है। उन्हें प्रभावशाली 'खस-आर्य' जातीय समूहों और मधेसी, दलित तथा हाशिये पर पड़े अन्य समूहों के परस्पर विरोधी दबावों के बीच संतुलन बनाना होगा

विदेश मंत्री शिशिर खनाल ने विदेश मामलों को लेकर उठ रहे संदेहों को दूर करते हुए घोषणा की है कि नेपाल गुटनिरपेक्षता की नीति पर चलेगा और देश की संप्रभुता, अखंडता और राष्ट्रीय हितों की रक्षा करेगा। उन्होंने कहा, 'भले सरकार बदली हो या नया मंत्री आया हो, विदेश नीति में कोई बदलाव नहीं होगा।'

चूंकि प्रधानमंत्री और उनके कई मंत्रियों ने भारत में पढ़ाई की है, इसलिए जानकारों को उम्मीद है कि भारत के साथ संबंधों में सुधार होगा। अतीत में, बालेन्द्र शाह को यह साबित करने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ी थी कि उनका झुकाव भारत की ओर नहीं है; यहां तक कि उन्होंने आरएसएस के 'अखंड भारत' वाले नक्शे के जवाब में अपने मेयर कार्यालय में 'बृहत्तर नेपाल' का नक्शा भी लगा दिया था।

*

बालेन्द्र शाह का उदय नेपाली राजनीति में बड़ा बदलाव है। काठमांडू के मेयर के तौर पर साढ़े तीन साल बिताने के बाद जनवरी 2026 में वह आरएसपी में शामिल हुए; मार्च में प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के तौर पर उन्होंने पार्टी को निर्णायक जीत दिलाई, और मार्च में ही वह प्रधानमंत्री बने। एक गायक और रैपर के तौर पर लोकप्रिय शाह ने बेंगलुरु से स्ट्रक्चरल इंजीनियरिंग में मास्टर डिग्री की। उन्होंने 14 सदस्यों वाला अपना मंत्रिमंडल बनाया; इनमें पांच महिलाएं हैं और ज्यादातर प्रोफेशनल पृष्ठभूमि की हैं। ऑस्ट्रेलिया से पीएचडी करने वाले वित्तमंत्री डॉ. स्वर्णिम वागले जाने-माने अर्थशास्त्री हैं। 15 में से 10 मंत्रियों की उम्र 40 साल से कम है और संसद के नए सदस्यों में 20 फीसद की उम्र 30 से कम है। 1959 में नेपाल के पहले आम चुनाव के बाद से कोई भी चुनाव इतना निर्णायक नहीं रहा। तब नेपाली कांग्रेस ने दो-तिहाई बहुमत हासिल किया था। आरएसपी ने 275 में से 182 सीटें जीती हैं। अब देखना है कि आरएसपी समर्थकों के ज्यादा जोशीले वर्ग को क्या काबू में रखा जा सकेगा। अमीषा पराजुली ने जब सोशल मीडिया पर ओली की गिरफ्तारी को असंवैधानिक और बदले की भावना से की गई कार्रवाई बताया, तो उन पर सोशल मीडिया पर ही लोग पिल पड़े।

अभिव्यक्ति की आजादी और प्रेस की स्वतंत्रता को लेकर नई सरकार का रुख साफ नहीं। पहले कड़े प्रतिबंधों के बावजूद मीडिया को पंचायत व्यवस्था की भी आलोचना करने की पूरी आजादी थी; वह बहुमत वाली सीपीएन माओवादी-नीत सरकार के खिलाफ भी निडर होकर बोलने का साहस रखती थी। आज का मीडिया ज्यादा सतर्क नजर आता है। उसे डर है कि कहीं उसे 'झोले' (अंधभक्त या चापलूस) कहकर उसका मजाक न उड़ाया जाए।

जेन जेड के विरोध प्रदर्शन सोशल मीडिया के जरिये किए गए, जिसमें पारंपरिक मीडिया को लगभग पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया। यह देखते हुए कि नेपाल में डिजिटल खाई बहुत गहरी है- 40 फीसद लोगों के पास अब भी इंटरनेट की पहुंच नहीं- नई सरकार का डिजिटल शासन पर जोर देना और डिजिटल तथा सोशल मीडिया पर निर्भरता ने लोगों में बेचैनी पैदा कर दी है। एक स्तंभकार ने लिखा कि राजनीतिक विमर्श अपारदर्शी सोशल मीडिया एल्गोरिदम से प्रभावित हो रहा है।

काठमांडू के महापौर के रूप में शाह मनमाने रवैये के लिए जाने जाते थे। एक टिप्पणीकार ने लिखा, 'उन्होंने पुराने जमाने के राष्ट्रवाद को मौजूदा पार्टी प्रणाली और पारंपरिक मीडिया के प्रति तिरस्कार से जोड़ा। उन्होंने अपने अनुयायियों से मुख्यतः सोशल मीडिया के जरिये संवाद करना चुना। उनके पार्किंग मुद्दों पर वार्ड प्रमुखों से मतभेद थे, अवैध निर्माणों को ध्वस्त किया, भूमिहीन अतिक्रमणकारियों और सड़क विक्रेताओं को विस्थापित किया, और कबाड़ व्यापारियों के तीव्र विरोध का सामना किया'।

अब डिलीट हो चुके सोशल मीडिया पोस्ट जिसमें पड़ोसी देशों और नेपाली नेताओं के लिए अपशब्द थे, चिंता का विषय बन गए थे। (अपने एक पोस्ट में उन्होंने नेपाली सरकार की सीट, सिंघा दरबार को आग लगाने की धमकी दी थी।) नेपाल को मुश्किल समय में रास्ता दिखाने का मुश्किल काम एक पुराने रैपर (शाह), एक पुराने डीजे (गुरुंग) और एक पुराने टॉक-शो होस्ट (लामिछाने) पर है। जहां लाखों लोगों की उम्मीदें इस तिकड़ी पर हैं, वहीं विश्लेषक अंदाजा लगाने में जुटे हैं कि बालेन अंततः नरेन्द्र मोदी की प्रशासन शैली अपनाएंगे या अरविंद केजरीवाल की। ■

उद्धव प्याकुरेल काठमांडू यूनिवर्सिटी में पॉलिटिकल सोशियोलॉजी के एसोसिएट प्रोफेसर हैं

गिरमिटिया प्रथा से मुक्ति का आंदोलन

आज मजदूरों के सत्ता प्रायोजित हाशियाकरण के बीच बढ़ती जा रही उनके संघर्षों की जटिलताएं

कृष्ण प्रताप सिंह

इधर अपने देश में मजदूरों के लगातार तेज होते सत्ता प्रायोजित हाशियाकरण के बीच उनके संघर्षों के रूप और जटिलताएं बढ़ती जा रही हैं। कारण यह कि उन्हें अंधाधुंध निजीकरण के भी कुफल भोगने पड़ रहे हैं और नए श्रम कानूनों के भी। सामाजिक सुरक्षा की कमी और न्यूनतम मजदूरी की अनुपलब्धता के अनर्थ जहां लगातार उनका पीछा कर रहे हैं, वहीं असंगठित क्षेत्र के मजदूरों (जो कुल मजदूरों के नब्बे प्रतिशत से भी अधिक हैं) की त्रासदियां अंतहीन-सी होकर रह गई हैं। यहां तक कि डिजिटल/गिग वर्कर्स के रूप में उभरी उनकी 'सबसे नई प्रजाति' को भी बेहतर कामकाजी परिस्थितियां उपलब्ध नहीं हैं।

इसके बावजूद ऐसा नहीं है कि ये सारे मजदूर अपने सामने उपस्थित विषम और विपरीत परिस्थितियों से मुंह फेर कर या हारकर चुप बैठ गए हों। अपनी-अपनी तरह से वे अपनी दुर्दशाओं के खिलाफ पूरी शक्ति से संघर्षरत हैं, लेकिन मुश्किल यह कि न अपने संघर्षों को समन्वित रूप दे पा रहे हैं और न उनकी प्रेरणाओं को एकजुट कर पा रहे हैं।

इसके चलते उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजों द्वारा देश में शुरू की गई गिरमिटिया मजदूरी की अमानवीय प्रथा के विरुद्ध चलाया गया सफल संघर्ष भी उनकी प्रेरणा नहीं बन पा रहा है, जिसका बनना कम-से-कम दो कारणों से उनके आंदोलनों की सफलता का मार्ग प्रशस्त कर सकता था।

पहला कारण यह कि गिरमिटिया मजदूरों के साथ जो एग्रीमेंट किया जाता था, वह आजकल प्रचलित संविदा, ठेका या कांट्रेक्ट का ही पूर्व रूप था और उस दास प्रथा का ही नया रूप बन गया था, जिसके खात्मे के बाद वह अस्तित्व में आया। दूसरा कारण यह कि उससे निपटने के लिए जो लंबा संघर्ष चला, वह समय के साथ समन्वय का अद्भुत उदाहरण बना और यह समन्वय ही उसको सफलता की राह पर ले गया।

बात को इस तरह बेहतर ढंग से समझ सकते हैं कि 1834 में गुलाम भारत में आम लोगों को भरपेट भोजन तक मयस्सर नहीं था। गोरे सत्ताधीश उन्हें मजदूर बनाकर अन्याय, शोषण और भेदभाव से भरी इतनी कड़ी शर्तों पर विदेश भेजने लगे, जो जानकारों के अनुसार गुलामी की शर्तों से कम न थीं। भेजने से पहले वे उनकी सहमति के नाम पर निश्चित अवधि के लिए उनके साथ एक एग्रीमेंट (करार) करते थे, जिसके दस्तावेज को गिरमिट कहा जाता था। कालांतर में इस गिरमिट के आधार पर विदेश गए मजदूरों को गिरमिटिया कहा जाने लगा।

इन मजदूरों में अधिकतर अशिक्षित अथवा निरक्षर होते थे और बदहाली के लिहाज से उनके लिए स्वदेश और परदेश दोनों लगभग बराबर ही थे। इसलिए गुलामी की शर्तों के बावजूद उनका एक हिस्सा ही अपने गिरमिट की अवधि पूरी कर स्वदेश लौटा करता था। परिस्थितियों के त्रासद होने के बावजूद दूसरा हिस्सा वहीं रहकर खेती और व्यापार आदि करने लग जाता था।

इस सिलसिले में अच्छी बात यह थी कि यह हिस्सा बहुत कुछ झेलकर भी अपनी संतानों को भरपूर शिक्षा दिलाता था, ताकि उनको उसकी जितनी विषम परिस्थितियों का सामना न करना पड़े। ऐसे में स्वाभाविक ही था कि इस हिस्से की अगली पीढ़ियां फिजी के सामाजिक और आर्थिक विकास में भरपूर योगदान दें और अपनी मेहनत एवं त्याग की बदौलत उसे इस लायक बना दें कि लोग उसे 'प्रशांत महासागर का स्वर्ग' कहने लगें।

काम की तलाश में भारत से विदेश जाने वाले गिरमिटिया मजदूर जिन्होंने मुक्ति के लिए लंबा संघर्ष किया

लेकिन यह हालात का सिर्फ एक पहलू था। आज यह सुनने में जितना खुशगवार लगता है, दूसरा पहलू उतना ही त्रासद था। वह जानें कब तक बाहरी दुनिया की नजरों से ओझल रहता, अगर बनारसीदास चतुर्वेदी और तोताराम सनाढ्य मिलकर इसके लिए जमीन-आसमान एक न कर देते। प्रसंगवश, तोताराम सनाढ्य भी गिरमिटिया मजदूर ही थे। लेकिन जीवट के इतने धनी थे कि 1893 में भले ही गिरमिटिया मजदूर के रूप में फिजी गए थे, 21 साल बाद स्वदेश लौटे तो उस नर्क के प्रति वितृष्णा से भरकर सारे गिरमिटिया मजदूरों के उद्धार और गिरमिटिया प्रथा के उन्मूलन का संकल्प ले चुके थे। इस संकल्प को पूरा करने के लिए उन्होंने अपने गिरमिट की अवधि खत्म होने के बाद कुछ दिनों तक फिजी में एक छोटे किसान और पुजारी का जीवन भी जिया था, जो बाद में उनके उक्त संकल्प की पूर्ति में बहुत काम आया। स्वदेश लौटने पर सनाढ्य 15 जून, 1914 को फिरोजाबाद के 'भारती भवन' नामक पुस्तकालय और प्रकाशन संस्थान के मैनेजर लाला चिरंजीलाल के साथ बनारसीदास चतुर्वेदी से मिले तो चतुर्वेदी जी ने छूटते ही कहा कि वह 'भारत मित्र' में फिजी में भारत से गए गिरमिटिया मजदूरों की दुर्दशा से संबंधित उनके भाषण का सारांश पढ़ चुके हैं। फिर पूछा कि आप इस संबंध में अपने अनुभव विस्तार से क्यों नहीं लिख देते? इस पर सनाढ्य का उत्तर था, 'मैं कोई लेखक तो हूं नहीं। अगर कोई लिखने वाला मिल जाए, तो मैं अपनी अनुभूतियां उसे सुना सकता हूं।'

> तब भारत से हर साल 10 से 15 हजार गिरमिटिया मजदूर फिजी, ब्रिटिश गुयाना, डच गुयाना, ट्रिनीदाद, टोबैगो और नेटाल, यानी दक्षिण अफ्रीका भेजे जाते थे। 1879 से 1916 तक भारत से 60,553 गिरमिटिया मजदूर तो अकेले फिजी भेजे गए

वह सनाढ्य को तत्काल कोई जवाब न देकर उन्हें अपने घर ले आए, जहां कुछ देर की वार्ता के बाद दोनों में सहमति हो गई कि 15 दिनों तक सनाढ्य रोज उनके घर पर आकर उन्हें अपने अनुभव सुनाएंगे और वह उसे लिपिबद्ध करेंगे। उन्होंने उक्त अनुभवों को 'फिजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' का नाम देकर भारती भवन से प्रकाशित कराया।

'फिजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' छपते ही आंदोलन उठ खड़ा हुआ। इससे सनाढ्य का यह विश्वास दृढ़ हुआ कि उसमें प्रकाशित उनके अनुभव गिरमिटिया प्रथा की समाप्ति के प्रयत्नों में बहुत मददगार सिद्ध होंगे।

चतुर्वेदी और सनाढ्य का सहयोग 'फिजी द्वीप के मेरे 21 वर्ष' के संपादन और प्रकाशन तक ही सीमित नहीं रहा। चतुर्वेदी ने 1914 से 1936 तक के अपने जीवन के 22 वर्ष गिरमिटिया मजदूरों और प्रवासी भारतीयों की सेवा को समर्पित कर दिए। इन वर्षों में उन्होंने सनाढ्य को उनके अभियान में मदद दिलाने हेतु अनेक अन्य नेताओं ही नहीं, महात्मा गांधी से भी मिलवाया और उनके गिरमिट प्रथा उन्मूलन आंदोलन को धार देकर परवान चढ़ाया। उसके बाद सनाढ्य साबरमती आश्रम में ही रहने लगे थे।

अपने आंदोलन के क्रम में सनाढ्य ने चतुर्वेदी की सहायता से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अनेक नेताओं तक यह अनुरोध भी पहुंचाया कि वह फिजी के भारतीय मजदूरों की दुर्दशा के मद्देनजर उनकी सहायता के लिए भारत से पर्याप्त संख्या में शिक्षक, वकील और कार्यकर्ता भेजने में अपनी भूमिका निभाएं। ज्यादा से ज्यादा लोगों तक अपनी बात पहुंचाने के लिए सनाढ्य ने चतुर्वेदी के ही सुझाव पर 'फिजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' की चार सौ प्रतियां हरिद्वार में हुए कुंभ, लखनऊ में हुए साहित्य सम्मेलन और मद्रास में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में बिना मूल्य लिए बांटीं थीं।

सीएफ एंड्रूज (महात्मा गांधी ने जिन्हें दीनबंधु की उपाधि दी थी, साथ ही इसका श्रेय भी कि उन्होंने सनाढ्य को खोज निकाला) इस पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद करवाकर उसे फिजी ले गए और गिरमिटिया प्रथा के खात्मे के आंदोलन में उसका भरपूर इस्तेमाल किया। फिर भी अंग्रेजों ने गिरमिटिया प्रथा के खात्मे में छह वर्ष लगा दिए और वह पूरी तरह एक जनवरी, 1920 को समाप्त हो पाई। लेकिन इससे एक बार फिर यह सिद्ध हुआ कि दमन, शोषण और अत्याचार के विरुद्ध ईमानदारी से किए गए संघर्ष कभी विफल नहीं होते।

प्रसंगवश, समूचे गिरमिटिया प्रथा उन्मूलन आंदोलन के दौरान 'फिजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' की धूम मची रही। दीनबंधु एंड्रूज द्वारा कराए गए उसके अंग्रेजी अनुवाद के आगे-पीछे गुजराती, बंगला, मराठी और उर्दू आदि भाषाओं में भी उसके अनुवाद हुए। मैथिलीशरण गुप्त ने उसी के आधार पर अपनी 'किसान' नामक पुस्तक लिखी, जबकि लक्ष्मण सिंह चौहान ने उसी से प्रेरित होकर 'कुली प्रथा' नामक नाटक लिखा, जो 'प्रताप' में छपा। उस वक्त के अनेक मुक्तिकामी पत्रों ने समीक्षात्मक टिप्पणियां अथवा अग्रलेख भी लिखे। कई बार वह भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत क्रांतिकारियों को पढ़ने के लिए भी दी जाती थी। इस कारण ऐतिहासिक मैनपुरी षडयंत्र केस के अभियुक्त क्रांतिकारियों के पास से भी बरामद हुई थी।

गिरमिटिया प्रथा खत्म होने और भारत के आजाद होने के बाद भी ऐतिहासिक महत्व के कारण 'फिजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' की मांग बनी रही, जिसे पूरी करने के लिए चतुर्वेदी ने अक्तूबर 1972 में उसका चौथा संस्करण निकाला। 'फिजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' का संपादन करते हुए उन्होंने उसमें सनाढ्य की बताई वे बातें शामिल नहीं की थीं, जो फिजीवासी भारतीयों और फिजी के मूल निवासियों की सामाजिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति के बारे में थीं। ये बातें बाद में 'भूतलेन की कथा गिरमिट के अनुभव' नाम से अलग पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुईं।

अपने अंतिम दिनों में चतुर्वेदी कई बार इसको लेकर खासे आह्लादित हुआ करते थे कि उन्हें अपने जीवन में गिरमिटिया मजदूरों और प्रवासियों की सेवा के प्रचुर अवसर मिले, जिनका इस्तेमाल करते हुए वह महात्मा गांधी, दीनबंधु सीएफ एंड्रूज, श्रीनिवास शास्त्री और संपादकाचार्य सी वाई चिंतामणि जैसी विभूतियों के संपर्क में आए। जून 1920 में उन्होंने दीनबंधु एंड्रूज के इंगित करने पर राजकुमार कालेज, इंदौर में अध्यापन की नौकरी छोड़ दी और 14 महीनों तक शांति निकेतन में रहकर प्रवासी भारतीयों के लिए काम करते रहे। फिर चार वर्ष साबरमती आश्रम में रहकर पूर्वी अफ्रीका की यात्रा पर भी गए। ■

गहरे अंतर्विरोध से जूझता लोकतंत्र

सहयोग नहीं, अंतर्ग्रहण का हो गया है सत्ता और पूंजी का संबंध

फोटो: गेटी इमेजेज

वाइब्रेंट गुजरात ग्लोबल समिट के दौरान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और उद्योगपति गौतम अडानी

शैलेन्द्र चौहान

आज का लोकतंत्र अपने ही निर्मित आदर्शों के भीतर एक गहरे अंतर्विरोध से जूझ रहा है। वह व्यवस्था, जिसे जनता की संप्रभुता और सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिए गढ़ा गया था, अब ऐसे बिंदु पर खड़ी है जहां सत्ता और पूंजी का संबंध केवल सहयोग का नहीं, बल्कि अंतर्ग्रहण का हो गया है। यह परिवर्तन आकस्मिक नहीं है। यह उस संरचनात्मक रूपांतरण का परिणाम है जिसमें राजनीति, अर्थव्यवस्था और कूटनीति एक साझा मंच पर आ खड़ी हुई हैं।

सत्ता का निजीकरण

परंपरागत रूप से राज्य को सार्वजनिक दायित्वों का वाहक माना गया, जबकि पूंजी का क्षेत्र निजी हितों तक सीमित समझा गया। लेकिन 21वीं सदी में यह विभाजन तेजी से ध्वस्त हुआ है। अब सत्ता केवल नीतियां नहीं बनाती, वह निवेश के अवसर भी तलाशती है। और पूंजी केवल लाभ अर्जित नहीं करती, वह नीतियों की दिशा भी निर्धारित करती है।

डॉनल्ड ट्रंप के कार्यकाल में जैरेड कुशनर की भूमिका इस अंतर्संबंध का एक सशक्त उदाहरण बनकर उभरी। जब कोई नीति-निर्माता एक साथ कूटनीतिक वार्ताओं में शामिल हो और उन्हीं क्षेत्रों से निजी निवेश भी आकर्षित कर रहा हो, तो यह केवल नैतिकता का प्रश्न नहीं रह जाता। यह संस्थागत विश्वसनीयता का संकट बन जाता है।

'हितों का टकराव' या 'हितों का संलयन'?

"कॉन्फ्लिक्ट ऑफ इंटरेस्ट" की अवधारणा अब अपने पारंपरिक अर्थों से आगे बढ़ चुकी है। यह अब केवल एक अपवाद नहीं, बल्कि एक सामान्यीकृत प्रवृत्ति बनती जा रही है। मोहम्मद बिन सलमान के नेतृत्व वाले निवेश ढांचों और पश्चिमी राजनीतिक तंत्रों के बीच बढ़ते संबंध यह संकेत देते हैं कि भू-राजनीति और वैश्विक पूंजी अब एक-दूसरे के पूरक तंत्र बन चुके हैं।

यहां सवाल यह नहीं रह जाता कि हितों का टकराव है या नहीं, सवाल यह है कि क्या यह टकराव अब एक सुनियोजित संलयन (फ्यूजन) में बदल चुका है, जहां नीति और लाभ एक-दूसरे को वैधता प्रदान करते हैं।

इतिहास बताता है कि युद्ध सिर्फ सैन्य घटना नहीं होता। उसके साथ हथियार उद्योग, ऊर्जा बाजार, पुनर्निर्माण ठेके, और निवेश अवसर भी जुड़े होते हैं।

कूटनीति: संवाद या औपचारिकता?

कूटनीति को परंपरागत रूप से युद्ध के विकल्प के रूप में देखा गया है। लेकिन जब वार्ताएं केवल एक औपचारिक चरण बन जाएं और उनके बाद पूर्वनिर्धारित सैन्य कार्रवाई हो, तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या कूटनीति अब निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया का हिस्सा है, या केवल उसकी वैधता का उपकरण?

यदि संवाद केवल समय खरीदने का माध्यम बन जाए, और निर्णय पहले ही कहीं और, किसी बंद कमरे या कॉरपोरेट बोर्डरूम में ले लिए जाएं, तो लोकतांत्रिक प्रक्रिया की पारदर्शिता केवल एक भ्रम बनकर रह जाती है।

सलाहकार तंत्र और अपारदर्शी शक्ति

आधुनिक लोकतंत्रों में निर्वाचित प्रतिनिधियों के साथ-साथ एक व्यापक सलाहकार तंत्र भी काम करता है। यह तंत्र अक्सर औपचारिक जवाबदेही से मुक्त होता है, लेकिन निर्णयों पर इसका प्रभाव अत्यंत गहरा होता है। बेंजामिन नेतन्याहू जैसे नेताओं के साथ व्यक्तिगत संबंध, और समानांतर रूप से निवेश तथा कूटनीतिक गतिविधियां, ये सभी उस "अदृश्य सत्ता" की ओर इशारा करते हैं जो औपचारिक संस्थाओं के बाहर संचालित होती है।

यहां लोकतंत्र का संकट और गहरा हो जाता है, क्योंकि निर्णय लेने वाले लोग जनता के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी नहीं होते, लेकिन उनके निर्णयों का प्रभाव पूरी दुनिया पर पड़ता है।

लोकतांत्रिक जवाबदेही का क्षरण

एलिज़ाबेथ वॉरेन जैसी आवाजें इस संकट को रेखांकित करती हैं। जब युद्ध के निर्णय और निजी निवेश एक ही समय में और एक ही व्यक्तियों द्वारा संचालित हों, तो जनता का विश्वास डगमगाना स्वाभाविक है। यह केवल एक देश की समस्या नहीं है। यह वैश्विक लोकतंत्र के ढांचे में उभरती हुई दरार है। रिवाल्विंग डूर की अवधारणा

"रवॉल्विंग डोर" की अवधारणा, जहां व्यक्ति सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच लगातार स्थानांतरित होता है, अब एक अपवाद नहीं, बल्कि एक संस्थागत संस्कृति बन चुकी है। इस संस्कृति में नीतियां केवल सार्वजनिक हितों के आधार पर नहीं, बल्कि संभावित निजी लाभों के संदर्भ में भी निर्मित होती हैं।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य: एक नई विश्व-व्यवस्था

यह प्रवृत्ति केवल अमेरिका या मध्य-पूर्व तक सीमित नहीं है। यह एक व्यापक वैश्विक रूपांतरण का संकेत है, जहां राज्य और कॉरपोरेट संरचनाएं परस्पर निर्भर हो गई हैं। कूटनीति और व्यापार के बीच की सीमाएं समाप्त हो रही हैं और युद्ध भी कभी-कभी "आर्थिक अवसर" के रूप में पुनर्परिभाषित किया जा रहा है।

> जब कोई नीति-निर्माता उन्हीं क्षेत्रों से जुड़ी कूटनीतिक वार्ताओं में शामिल हो जिन क्षेत्रों में निजी निवेश की संभावना पर भी उसकी नजर है, तो यह सिर्फ नैतिकता का प्रश्न नहीं रह जाता। यह संस्थागत विश्वसनीयता का संकट बन जाता है

इस नई व्यवस्था में "शांति" और "लाभ" के बीच का अंतर धुंधला पड़ता जा रहा है। शांति अब केवल संघर्ष की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि एक स्थिर निवेश-पर्यावरण भी बनती जा रही है।

धुंधलापन ही नई स्पष्टता

समस्या यह नहीं है कि सार्वजनिक दायित्व और निजी हितों के बीच की सीमाएं धुंधली हो रही हैं। समस्या यह है कि यह धुंधलापन ही अब एक नई सामान्यता (न्यू नॉर्मल) बनता जा रहा है। जब सत्ता, पूंजी और कूटनीति एक ही धुरी पर आ मिलते हैं, तो निर्णयों की निष्पक्षता और पारदर्शिता स्वाभाविक रूप से संदिग्ध हो जाती है।

यह स्थिति हमें एक असहज प्रश्न के सामने खड़ा करती है। क्या आधुनिक विश्व-व्यवस्था में "शांति" और "लाभ" वास्तव में एक ही परियोजना के दो नाम बन चुके हैं? और यदि ऐसा है, तो इस परियोजना की वास्तविक कीमत कौन चुकाता है— राज्य, समाज, या वह आम नागरिक, जिसकी आवाज लोकतंत्र की बुनियाद मानी जाती है, लेकिन जो निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया से सबसे दूर होता जा रहा है? ■

Published Date 12 April, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

बांसुरी में सुर भरती मोना

सुरीली-साफ आवाज की बांसुरी के लिए बांस में गरम लोहे से छेद करना कौशल का काम है, जो मोना जैसी कई महिलाएं बखूबी करती हैं

काशिफ़ा विसाल

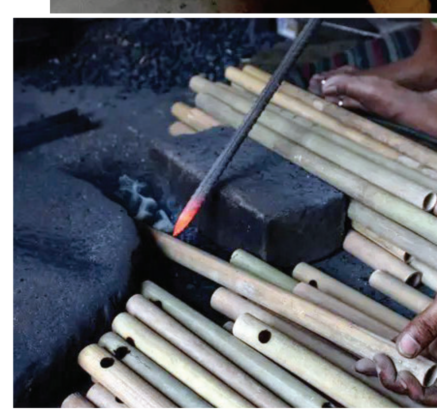

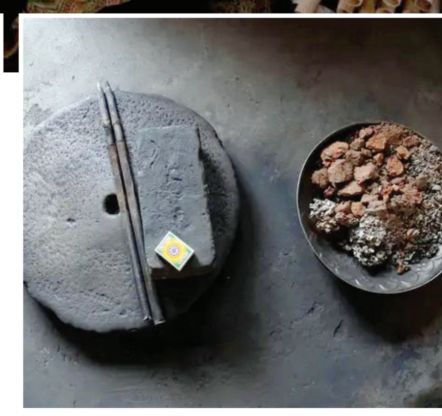

अपनी कार्यशाला में मोनाः बांसुरी बनाने के लिए हुनर चाहिए और ज्यादा बांसुरी बनाने के लिए तेजी चाहिए। छड़ों को गरम करना उससे बांस में छेद बनाना और फिर निकलते है सुर...

मोना की आंखें बंद हैं। एक हाथ में वह गरम लोहे की छड़ पकड़े हैं, और दूसरे में खोखली बांस की डंडी। कमरा धुएं से भरा है। आंखें बंद रखते हुए वह छड़ से बांस में एक छेद करती हैं, फिर दूसरा छेद, और फिर एक और। कुल मिलाकर छह छेद।

आंखें खोलते हुए वह कहती हैं, "बांसुरी बनाने के लिए हुनर चाहिए और ज्यादा बांसुरी बनाने के लिए तेजी चाहिए।" फिर हंसते हुए जोड़ती हैं, "मर्द यह काम नहीं कर सकते। यह मुश्किल काम है।"

मोना (वह इसी नाम का इस्तेमाल करती हैं) तीसरी पीढ़ी की बांसुरी बनाने वाली हैं। करीब 35 साल की मोना कहती हैं, "बांसुरी एक साधारण, लेकिन जटिल वाद्य है। बिना छेद के यह सिर्फ बांस की डंडी है, लेकिन सही छेद के साथ इसमें सारे सुर उतर आते हैं, यह कान्हा जी का प्रतीक है।"

वह बिना प्लास्टर वाले एक कमरे के बीच में बैठी हैं, जहां पास में मिट्टी का चूल्हा जल रहा है। छत पर बनी एकमात्र खिड़की से धूप अंदर आ रही है, बाहर आसमान में पतंगें उड़ रही हैं।

मोना उत्तर प्रदेश के उत्तरी किनारे पर बसे पीलीभीत शहर में रहती हैं। मोना जैसे बांसुरी कारीगरों की जड़ें यहां सदियों पुरानी हैं। हिमालय की तराई में स्थित यह शहर भारत की लगभग 90 प्रतिशत बांसुरी का उत्पादन करता है। इस काम में इस्तेमाल होने वाला बांस असम से लाया जाता है।

मोना कहती हैं, "जबसे मुझे याद है, मैंने हमेशा बांसुरी बनते हुए देखी है।" उन्होंने यह काम अपनी मां से सीखा। "जब मैं बहुत छोटी थी, मैं अपनी मां को आग के सामने बैठकर बांस में छेद करते हुए देखती थी।" उस छोटी लड़की ने पहले देखकर और फिर अभ्यास करके यह काम सीखा।

सुबह के नौ बजे हैं और अप्रैल के इस गर्म दिन में हवा भी गर्म है। मोना छत पर बने अपने कार्यस्थल पर पहुंचती हैं और जल्द ही उनकी पड़ोसी शबनम और भतीजी सोनम, जो दोनों बीस के आसपास की उम्र की हैं, उनसे जुड़ जाती हैं। दोपहर 2 बजे तक तीनों मिलकर 500 बांसुरी बना लेती हैं और कुल मिलाकर क़रीब 300 रुपये कमाती हैं। एक साल में यह संख्या लगभग 2 लाख बांसुरी की होती है।

इतनी बड़ी संख्या में बांसुरी बनाने के बावजूद, मोना कहती हैं, "मैंने कभी खुद बांसुरी बजाने के बारे में नहीं सोचा, क्योंकि महिलाएं बांसुरी नहीं बजातीं। मेरे पति बहुत अच्छा बजाते हैं, मुझे उन्हें सुनना अच्छा लगता है।"

*

मोना एक टूटी हुई बांस की डंडी दिखाते हुए समझाती हैं, "अगर हम छेद करते समय ज्यादा या कम दबाव डालें, तो बांस अंदर से फट जाता है और पूरा टुकड़ा खराब हो जाता है।"

महिलाएं आरी, ब्लेड, ट्यूनर चाकू जैसे तेज औजारों का इस्तेमाल करती हैं और फिर सतह को चिकना करने के लिए रेगमाल पेपर का उपयोग करती हैं। मोना बताती हैं कि आरी से बांस की डंडी काटी जाती है, ब्लेड, छैनी और चाकू से उसे छीलकर आकार दिया जाता है। ट्यूनर चाकू और लोहे की छड़ से छेद बनाए जाते हैं।

मोना बताती हैं, "हाथ में चोट लगना या जलना बहुत आम है। अगर चोट थोड़ी गहरी हो जाए, तो लगभग एक हफ्ते तक काम नहीं कर पाते और रोज की कमाई भी छूट जाती है।"

> बाजार में मोना की बांसुरी आकार और गुणवत्ता के अनुसार लगभग 50 रुपये में बिकती है। उनके पति शकील हर महीने अमृतसर जाकर स्थानीय मेलों में बांसुरी बेचते हैं। लेकिन यह अनियमित आय उन्हें आर्थिक मुश्किलों से बाहर निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है

कई कारीगर बांस को सुखाने की प्रक्रिया में निकलने वाले धुएं के लंबे समय तक संपर्क में रहने के कारण सांस की बीमारियों से भी जूझते हैं। मोना कहती हैं कि समय के साथ उनकी आंखें कमजोर हो गई हैं और उनकी पीठ में दर्द रहता है। वह जोड़ती हैं, "अब तो मैं अपनी आंखों की हालत के कारण सुई में धागा भी नहीं डाल सकती।"

मोना, शेख़ मंसूरी समुदाय से ताल्लुक रखती हैं, जिसे राज्य में अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। वह पारी से बताती हैं, "पहले केवल हमारा समुदाय ही इस पेशे में था। लेकिन अब अन्य जातियां भी इस काम से कमाई करने लगी हैं।"

मोना का अनुमान है कि पूरे शहर में लगभग 100–150 महिलाएं इस काम में लगी हैं। उनका काम महत्वपूर्ण है, लेकिन बांसुरी की सप्लाई और बिक्री पर थोक व्यापारी और खुदरा विक्रेता नियंत्रण रखते हैं। वही इसकी कीमत, मजदूरी तय करते हैं और पीलीभीत के बाहर, आमतौर पर मथुरा में, खरीदारों से सौदा करते हैं। दिहाड़ी मजदूर, जो ज्यादातर पुरुष होते हैं, बांस को बांसुरी का आकार देते हैं और 500 टुकड़ों के लिए उन्हें लगभग 300–350 रुपये मिलते हैं, जो उत्तर प्रदेश में अर्ध-कुशल और कुशल मजदूरी (465.13 रुपये और 521 रुपये) से काफी कम है।

मोना की दिनभर की लगभग 300 रुपये की कमाई सोनम और शबनम के साथ बांटी जाती है, जिससे उनकी आय न्यूनतम मजदूरी से भी काफी कम रह जाती है।

मोना 'काशकारों' (थोक व्यापारी) के अधीन दिहाड़ी मजदूर के रूप में काम करती हैं। काशकारों के पास कच्चा माल खरीदने, मजदूर रखने और बांसुरियों को पीलीभीत के बाहर के बाजारों तक पहुंचाने के लिए जरूरी पूंजी होती है। मोना के पति शकील अहमद कहते हैं, "काशकारों की पत्नियां बांसुरी बनाने का काम नहीं करतीं, क्योंकि उन्हें इसकी जरूरत नहीं होती। उनके पास परिवार चलाने के लिए पर्याप्त साधन होते हैं।"

मोना याद करते हुए कहती हैं, "पांच साल पहले (2020 में) हमने (मैं और मेरे पति) यूनियन बैंक से 50,000 रुपये का कर्ज लिया था, ताकि हम अपना बांसुरी बनाने का छोटा व्यवसाय शुरू कर सकें।" उनकी आवाज में उत्साह के साथ थोड़ी उदासी भी झलकती है। "हमने 3–4 लाख रुपये तक के बड़े कर्ज का भी सोचा था, लेकिन गारंटी न होने के कारण हमें मना कर दिया गया।"

मोना जैसे कारीगर बताते हैं कि वे असम से आने वाले बांस को स्थानीय विक्रेताओं से महंगे दाम पर खरीदते हैं। उनका मुनाफा बहुत कम होता है। वह बताती हैं, "छोटी बांसुरी (10 इंच) पांच से 10 रुपये में बिकती है और बड़ी (15 इंच) करीब 20 रुपये में," वह लंबाई के हिसाब से कीमत बताती हैं।

लेकिन बाजार में मोना की बांसुरी आकार और गुणवत्ता के अनुसार लगभग 50 रुपये में बिकती है। उनके पति शकील हर महीने अमृतसर जाकर स्थानीय मेलों में बांसुरी बेचते हैं। लेकिन यह अनियमित आय उन्हें आर्थिक मुश्किलों से बाहर निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है। वह अक्सर तैयार बांसुरी उसी व्यापारी को कम दाम पर बेच देते हैं, जिससे उन्होंने बांस खरीदा था। इससे कर्ज और निर्भरता के चक्र में फंसे रहते हैं। आज 6.4 प्रतिशत ब्याज दर वाले कर्ज की क़िस्त के रूप में हर महीने 1,000 रुपये चुका रहे हैं, लेकिन लगातार घाटे के कारण अभी तक कर्ज खत्म नहीं कर पाए हैं। ■

अनुवादः प्रतिमा। साभारः ruralindiaonline.org

ADVERTISEMENT RATE CARD

w.e.f. 1 September 2025

NATIONAL HERALD ON SUNDAY   संडे नवजीवन

The AJL Group has two weekly newspapers and three website portals in English, Hindi and Urdu

www.nationalheraldindia.com | www.navjivanindia.com | www.qaumiawaz.com

Commercial Display (w.e.f 1 Sept 2025)

Category of Advertisements (C/BW)	National Herald on Sunday (National Edition)	National Herald on Sunday (Mumbai)	Sunday Navjivan (National Edition)
Full Page (1650 sq.cm)	Rs 10 Lakh	Rs 8 Lakh	Rs 10 Lakh
Half Page (800 sq. cm)	Rs 6 Lakh	Rs 5 Lakh	Rs 6 Lakh
Quarter Page (400 sq. cm)	Rs 4 Lakh	Rs 3 Lakh	Rs 4 Lakh
< Quarter Page (per sq. cm)	Rs 700	Rs 450	Rs 700

PAGE PREMIUM		Display Ads BW/Color	Political Ads BW/Color
	Front page	100% Surcharge	200% Surcharge
	page (3 & back)	25% Surcharge	100% Surcharge
	Specified page	50% Surcharge	50% Surcharge

*Advance payment is needed for all political advertisements.

Classified for festival greetings, anniversary & notices

Full page @ Rs 1,00,000 | Half Page @ 60,000

< 240 sq. cm @ Rs 175 per sq. cm

State Govt Advertisements/ C/BW

@ Rs 525 per sq. cm

The Associated Journals Limited
Herald House, 5A, Bahadur Shah Zafar Marg,
New Delhi 110002
Phone: 011-47636300 - 313
Whatsapp No: 9650400932
Email: advt@nationalheraldindia.com

Online Remittance/Bank Beneficiary Details:
Name: **Associated Journals Limited**
Bank Name: **Canara Bank**
Branch Name: **I P Estate, New Delhi-110002**
C/A No.: **90171010003955;** IFSC Code: **CNRB0019017**
GST No.: **27AAECA1180A1ZB ;** PAN No.: **AAECA1180A**

NOTE: Cheque / DD should be drawn in favor of "Associated Journals Limited" and sent to Herald House, 5-A Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi -110002.

General Terms and Conditions

w.e.f. 1 September 2025

National Herald on Sunday (Delhi & Mumbai) and Sunday Navjivan

1. All advertisements are published in Edition(s) of the paper and charges are payable strictly in advance of publication by Bank Draft or Bank Transfer (RTGS) and /or cheques only except in the case of advertising agencies accredited to INS.

2. Advertisements are accepted for publication on top of advertisements positions on an additional charge of 25%. No advertisement is however published on top of news-matter.Top of column position cannot be guaranteed even on payment of additional charge of 25%.

3. Extra charges for top of column position are calculated on the total amount payable inclusive of amount payable for specified pages.

4. Every reasonable effort is made to publish an advertisement on the date(s) specified by an advertiser. The Management however reserves the right to vary the date or the scheduled date(s) of publication, with or without notice to the advertiser, owing to the exigencies of availability of spaces.

5. The management reserves the right to refuse, suspend or stop, in its discretion, publication of any advertisement without assigning any reasons.

6. While every endeavour will be made by the Management to avoid publication of competitive advertisements in close proximity to one another, no guarantee can be given in this respect nor will the claims be entertained for free insertions in the event of announcements of rival product appearing on the same page.

7. The placing of an order by an Advertiser/Advertising Agency constitutes a warranty by the Advertiser/Advertising Agency to the Associate Joumals Limited Management that the Advertiser/ Advertising Agency has secured the necessary authority and permission in respect of the use in the advertisement or advertisements of pictorial representation of (or purporting to be of) living persons and all references to words attributing to living persons.

8. The advertisements will be charged at the rate applicable on the day of publication of the advertisement irrespective of the date of booking, date of release order and whether the advertisement is part of any package/scheme.

9. Standing instructions are accepted over Whatsapp or email. However verbal instructions must be clear and specific. Quoting reference of the previous release order and/or new scheduled dates of insertions in respect of which the instructions are given. These instructions should be given afresh either through Whatsapp/email and/or Landline phone.

10 Booking of space for premium positions in all The Associated Journals Limited publications will be confirmed only upon receipt of original releaseorder. Fax/Scanned copies, Emails will be entertained for the same.

11. "Reader" advertisements are accepted but will be distinguished from 'news matter' by a rule around the advertisement matter and expression 'advt' will be added at bottom.

12. Solus/Semi Solus positions cannot be guaranteed on the front page.

13. Cancellation charges @20% of the total cost of the front/Full page advertisement shall be levied if a cancellation of booking is made two days before the scheduled date of publication. Cancellation charges @35% of the total cost of the full front-page advertisement shall be levied if the cancellation of a booking of front/full page advertisement is made one day before the scheduled date of the publication.

14. In the event of printing mistake, omission or non-publication of advertisement, the advertising agencies shall have to furnish the instructionson behalf of their client for republication. In the event of a dispute the liability of Management shall be restricted to the amount received against sale of spaces for the advertisement received. All disputes /claims regarding advertisement /complaints must be made within a period of one month of publication date after which no claim will be entertained.

15. The Management shall not be responsible for any loss or damage caused by an error or inaccuracy in the printing of/or omission in inserting advertisements.

16. In case of dispute, the agency shall not be entitled to invoke any condition suggestive of existence of an arbitration agreement unless specifically agreed to by the Management.

17. No deduction is allowed from bills raised against publication of advertisement(s) on account of any defective insertion(s). Any claims in these respects, if admitted, will be met by publishing a corrigendum/ free insertion or the like, depending upon the merits of the claim vis-a-vis the error in publishing the advertisement(s) or other materials. Claims for refund or for compensation, if admitted, shall be restricted to the charges for advertisement received by Management. The decision of the management shall be final in this regard.

18. The advertisements released by Government/Semi Government/ Undertakings/Autonomous body are published in classified display column only at commercial rates irrespective of the number of words.

19. The advertising agencies releasing an advertisement on behalf of its client shall be deemed to have undertaken to keep the management indemnified in respect of costs, damages or other charges incurred by the Management as a result of any legal action or threatened legal action arising from and in relation to publication of any advertisement published in accordance with the release order and the copy of instructions supplied by the agency.

20. The agency shall bring to the notice of its clients these General Terms and it shall not be open to any of its clients to plead/claim or aver ignorance of these General Terms which apply to every transaction of sale of space in particular issue(s) of any of publications of The Associated Joumals Limited.

21. No agency commission is payable on the on the classified advertisements chargeable at DAVP rates.

22. Fraction of centimetre in excess of the scheduled size shall be charged as full centimetre if the advertisement exceeds the scheduled size. If the material supplied is shorter than the scheduled size, the advertisement will be charged for the size scheduled and not for theactual space occupied or consumed by the advertisement on the basis of the short size material so supplied.

23. The Management shall not be bound by notice of stoporders, cancellations, preponements/postponements or alterations/deletions/ additions in the material(s) of advertisement(s) booked for publication in special or specified position if received less than one week prior to dates of insertion. For ordinary advertisement, the stoppage or not of cancellation must reach at least four days before the scheduled date of publication of advertisement.

24. The Management reserves the rights to revise the rates and terms and conditions without any notice.

25. Every Advertiser/Advertising Agency acknowledges having read and accepted these Terms and Conditions.

26. Courts only in New Delhi, shall have the jurisdiction to entertain and decide all disputes and claims, arising out of publication of any advertisement in the Associate Journals limited publications.

27. The Management shall be at liberty to refuse to carry advertisements/ adjust amounts paid for subsequent ads against pre-existing liabilities, even without carrying such subsequent advertisement.

28. Advertising party hereby agrees to indemnify, defend and hold harmless AJL, it's directors, officers, shareholders and agents against any and all third party claims arising out of or in connection with the content or placement of the advertisement, and to the fullest extent.

29. In no event shall AJL be liable hereunder for any indirect, incidental, special, consequential, punitive or exemplary damages or losses in connection with these terms even if advised in advance of the possibility of arising of such liability, damages or losses.

30. In no event shall AJL's aggregate liability exceed Rs. 10,000 to any advertising party.